आञ्चलिक
कहानियाँ
द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

आञ्चलिक कहानियाँ

स्व० द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

प्रकाशक

शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी-२२१००२

आमुख

आज के कथाकारों में द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की अपनी पहचान है— ऐसी पहचान जो उन्हें कहानी साहित्य के पूरे इतिहास में अलग करती है। निर्गुण जी कहानी की अंतर्वस्तु और भाषा संरचना के स्तर पर एक उज्वल इतिहास का सृजन करते हैं। वे भाषा को जीवन से उठाते हैं और फिर शब्द दर शब्द उसमें व्यंजना पैदा करते जाते हैं। भाषा की यह साधना लेखक की अपनी विशिष्ट उपलब्धि है। भाषा स्वयं संवेदना है, यह लेखक की हर कहानी में देखा जा सकता है। 'तिवारी' कहानी का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—'समधी के शामियाने के आगे कुछ भीड़ थी और कुछ भीड़ इधर थी महादेव जी के मन्दिर के पास।'

ऐसी सहज भाषा हर लेखक के वश की बात नहीं है। लेखक को यह गुण प्रकृत्या मिला है, जो उसके कथाकार को विशिष्टता प्रदान करता है। भाषा का का यह गुण प्रेमचंद में देखा गया था, पर निर्गुण जी की भाषा-सहजता एक आश्चर्य है।

कहानी में अनेक आन्दोलन और वाद आये पर लेखक वादों के विवाद से मुक्त अपने सरल कथा पथ पर गतिशील रहा। निर्गुण जी एक मौन साधक हैं जो प्रचार और प्रतिष्ठा से सदा दूर रहे। उनका एक ही उद्देश्य है—कहानियों के माध्यमों से जीवन की रचना, मानवीय मूल्यों के साथ जीवन का पुर्नसृजन। परिवार, व्यक्ति और समाज से लेखक कथ्य संचित करता है और जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में करुणा, ममता, स्नेह, तथा आदर्शों का रंग भरकर कहानी रच देता है।

संग्रह की हर कहानी मानवीय मूल्यों को समर्पित है। पाठकों को ये कहानियाँ जितनी रोचक प्रतीत होंगी, उतनी ही संदेहवाहक भी लगेंगी आज की समस्यायों का समाधान प्रदान करती भी लगेंगी। सभी कहानियाँ श्रेष्ठता की मानक हैं।

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

१७ दिसम्बर १९८४

—डा० श्रीप्रसाद

अनुक्रमणिका

तिवारी

बाँकेलाल तिवारी घर में घुसे, तो चूल्हा ठंडा पड़ा था और मालकिन ओसारे में निश्चिन्त बैठीं छोटी बच्ची को दूध पिला रही थीं।

बाँके तिवारी चौके में झांककर बोले, "खाना नहीं बनाया ?"

मालकिन ने स्वर को ऊँचा करके जबाब दिया, "बनाऊँ क्या अपना सर ? तड़के ही कह दिया था कि दाल, तरकारी कुछ नहीं है। अब लौटे हैं! खाली हाथ हिलाते आ खड़े हुए।"

तिवारी बगलें झाँकने लगे। फिर उलटी पड़ी कटोरी को सीधा करते बोले "जमींदार रामनारायण की बारात आ गई। उसीको देखने चला गया था।"

मालकिन ने उसी स्वर में कहा, "बारात देखने से पेट भर गया हो तो अब कुछ शाक-तरकारी ले आओ। पाँच सालके बच्चे हैं न? बारात देख रहे थे!"

तिवारी व्यस्तता से बोले, "लो, चला मैं। अभी कुछ लिए आता हूँ शाक-तरकारी। तुम चूल्हा सुलगाओ तब तक।"
मालकिन ने बच्ची को छूड़ाकर अलग किया, भवें चढ़ाकर बोलीं, "अभी चूल्हा सुलगाकर क्या होगा ?"

पर तिवारी ने ध्यान न दिया। पैरों में फटा जूता डाला और बाहर को लपकते चले गये।....

जमींदार के नौकर-चाकर मिले। बारात के लिए नाश्ता जा रहा था। तिवारी उन्हींके साथ हो लिए, और जनवासे तक साथ-साथ आये बातें करते।

पक्की सड़क के किनारे पाँच मेहराबदर खम्भोंवाली धर्मशाला खड़ी थी जिसके कंगूरे मीलों से दिखाई देते थे। आगे ईंटों का लहरियादार फ़र्श था और दायें बाग। आम के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की कतारें तिरछी होकर दूर तालाब के किनारे तक चली गई थीं, जिनकी घनी टहनियाँ आपस में गुंथ कर एकाकार हो गई थीं जिनके नीचे सूरज की किरनें कभी न आ पातीं। आमों के बौर झर गए थे और

छोटी-बड़ी, हरी अमियों से डालों के छोर सजे थे, जिन्हें छोटे बच्चे ललचाई नजरों से देखते और ढेले मारते ताक-ताक कर।

इसी बाग में बारात ठहरी थी। सारे गाँव में इसका शोर था कि लड़के वाले बहुत बड़े आदमी हैं। पाँच हाथी थे,तवायफ़ें थीं, भाँड़ थे और रथों की और रहलुओं की तो शुमार ही न थी। ऐसी घोड़ियां लाये थे सरगुजा वाले ठाकुर की इस गांव के लोग उनकी चाल देखकर अचम्भे में आ गये और दाँतों-तले अंगुली दबा ली।

अमीर-उमरा, रईस और बड़े-बड़े ओहदे वाले अफ़सर तक इस बारात में थे, जिनकी अलग-अलग रंगीन छोलदरियाँ लगी थीं, जिनमें बार-बार तिरछे साफे बाँधे, मूंछें उमेठे सेवकगण पर्दे हटाकर बराबर आते-जाते थे।

लड़की वाले खौफ़-सा खाये थे और तन-बदन का होश खोकर, जीजान से सरगुजावालों की खातिर में लगे थे और हर बात पर हर बाराती के हाथ जोड़ते थे और जो कुछ कहना होता था, 'सरकार' कहकर अर्ज़ करते थे। भाग-दौड़ करते-करते उनके माथों से पसीना टपक रहा था।....

नाश्ते के थाल लिए नौकर-चाकर आगे बढ़ गये। जनवासे का पड़ाव आ गया, तिवारी ठिठक गये। घड़ी-भर चारों ओर नजर दौड़ाकर निहारते रहे, फिर पीछे मुड़कर सड़क पार करके, शेख जी के बाग में उतर आये नीचे।

रखवाला गाँव में गया था, या शायद उधर बारात का तमाशा देख रहा था। तिवारी ने उसकी झोपड़ी में झाँककर देखा, तो प्रसन्न हुए। सोचा, चलो यह अच्छा रहा। दस-पाँच अमियां जेबों में डाल लें। खटाई का काम देंगी। हर पेड़ पर नजर डालते, अमियों को ताकते, आगे बढने लगे बाग के बीच। मानो टहल रहे हों, मानो वे ही बाग के मालिक हों।

तभी उधर से पत्तों की चुर-मुर होती सुन पड़ी। शायद कोई चालाक लौंडा है, जो शायद अमियाँ चुरा रहा है। जोर से डाँटने को हुए कि उस 'चोर' का चेहरा दीख गया। हैरत में आ गये।

यह इन्द्रदेव था, जमींदार रामनारायण का सबसे बड़ा दामाद। वह भी अपनी साली की शादी में आया था। उसकी स्थिति ऐसी थी कि वह न बाराती

था, न घराती। काम की इतनी भीड़-भाड़ थी, पर उसमे भला कोई क्या काम करने को कहता! और अपने-आप किसी काम में जुट पड़ने में इन्द्रदेव को संकोच लगा। अकेला बैठक में पड़ा था। छोटी सालियाँ और साले उससे बार-बार आकर कहते थे—'नाश्ता और ले आवें?····थोड़ा-सा शर्वत और पीजिए, जीजाजी!····पान खाइए न, जीजाजी!····आपकी बहिन का क्या नाम है?···· आपको नाचना आता है, जीजाजी?'

जब इन्द्रदेव को यह परिस्थिति असह्य हो उठी, तो वह चुपचाप निकल आया बाहर। बारात के हंगामे मे बचना, इधर पूरब वाले बाग में चला आया अकेला, छड़ी लिये। फिर घने पेड़ों की छांह में धीरे-धीरे टहलता दो जगह ज़रा देर बैठकर, यहाँ मुराव की बारी में आ पहुंचा था।

बारी में लहलहाते पत्तों वाली घुइयाँ की हरियाली दूर तक फैली थी ओर मुराव अपनी कुइयाँ से पानी सींच रहा था उन पौधों मे, जिससे हरी दूबवाली किनारे की मेंड़ें नम होकर ठण्डी हो गई थीं।

इन्द्रदेव वहीं एक मेंड़ पर बैठ गया और इस दृश्य से विमुग्ध होकर, कविता गुनगुनाने लगा।

यह 'सुदामा-चरित्र' का एक कवित्त था, जिसका चौथा पद बार-बार सोचने पर भी इन्द्रदेव को याद न आया। और उसने कुछ खिन्न होकर अकेले में अपने-आपसे कहा, "क्या था आखिरी चरण? क्या था····"

तभी पीठ पीछे से एक विनम्र स्वर सुन पड़ा, "मै सुनाऊ शाहजादे साहब को?"

इन्द्रदेव ने चौंककर सिर घुमाया, तो एक अजनबी, अधेड़ उम्र का व्यक्ति खड़ा मुसकरा रहा था। उस व्यक्ति ने उत्तर की प्रतीक्षा न की। वहीं इन्द्रदेव के पास मेंड़ पर बैठ गया और मुसकराता बोला—"चौथा चरण यों है—पानी परातको हाथ छुओ नहिं, नैनन के जल सों पग धोये'····।"

यह बांकेलाल तिवारी थे, जिनकी जेबों में अमियां भरी थीं और जो इन्द्रदेव को देखकर चले आये थे।

इन्द्रदेव ने प्रसन्न होकर पूछा, "आप कवि हैं क्या?"

तिवारी ने हाथ जोड़कर कहा, "मैं तो अपढ़, गंवार हूँ। दादा पंडित थे। उन्होंने वचपन में मुझे बहुत-से कवित्त याद करा दिये थे। लीजिये, यह छड़ी लीजिए। इसे आप उस बाग में भूल आये थे।"

इन्द्रदेव ने अचरज से कहा, "अरे! और अपनी हाथी-दाँत वाली उस छड़ी को लौट-पौटकर वोला हँसकर, "मेरे भाग्य अच्छे थे, जो आप जैसे आदमी के हाथ यह किमती चीज़ पड़ी। कोई वेईमान या चोर-उचक्का पाता, तो हरगिज़ न छोड़ता। आप यहाँ गाँव में क्या करते हैं? खेती करवाते हैं शायद?"

"जी हाँ।" तिवारी ने शीघ्रता से कहा।

"मालिक पास न हों तो नौकर ठीक तरह काम नहीं करते। शायद ईख भरी जा रही होगी। उधर ही गये होंगे, नौकरों को डाटने-फटकारने?" हँसकर इन्द्रदेव ने कहा।

तिवारी बोले, "जी हाँ। नौकर आजकल ऐसे खराब हो गये हैं कि आपसे क्या बयान करूँ?"

इन्द्रदेव ने मुसकराकर कहा, "आपने अभी मुझसे बिलकुल झुठ कहा था कि 'अपढ़-गँवार' हैं। यह जुवान अपढ़-गँवार की हरगिज़ नहीं हो सकती। कुछ और सुनाइये।"

तिवारी ने अति विनम्र होकर कहा, "थोड़ा-वहुत पढ़ा हूँ। अक्षर पहचान लेता हूं। आप उर्दू शायरी से कुछ शौक रखते हैं?"

"खूब! सुनाइये, कोई गज़ल सुनाइये।"

तिवारी ने एक चुभती हुई चीज़ सुनाई। इन्द्रदेव वहुत प्रसन्न हुआ और जोश में आकर उसने भी कुछ सुनाया। तिवारी ने दाद दी और फिर कहा, "गुस्ताखी माफ़ हो, हुजूर ने गजल और पूरी नहीं सुनायी।"

"क्या यह गज़ल और आगे भी है?"

तिवारी ने सिर हिलाकर कहा, "जी हाँ, मक्ता अर्ज़ करता हूँ—

कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे-नीमकश को।
यह खलिश कहा से होती, जो जिगर के पार होता।"

इन्द्रदेव चौंक पड़ा। आखें फैलाकर बोला, "गजब का शेर है साहब !"

तभी दस कदम की दूरी पर किसीके जोर से रोने- चीखने की आवाज सुनाई दी और फिर मुराव के कर्कश मुख से निकली एक भद्दी गाली। इन्द्रदेव फ़ौरन उठकर खड़ा हो गया। फिर तेज़ी से आगे बढ़ गया उस ओर जहाँ मुराव एक दस-बारह साल के लड़के को पड़ापड़ थप्पड़ मार रहा था और लड़का 'हाय, बप्पा रे !' कहकर चीख रहा था। इन्द्रदेव ने द्रवित होकर मुराव का हाथ पकड़ लिया। लड़के को छुड़ाकर अलग किया। शान्त स्वर में बोला, "क्यों इतना मार रहे हो ?"

"यह देखिये !"—मुराव ने नीचे जमीन की ओर इशारा करके कहा, "इसकी करतूत देखिये सरकार, चोट्टा कहीं का !"

ज़मीन पर बैंगनों का ढेर लगा था। तिवारी जाने कब पीछे आ खड़े हुये थे। इन्द्रदेव ने सिसकी भरते लड़के को निहारकर कहा, "बालक है। जाने दो अब। नासमझ है।" और अनुमोदन के लिये तिवारी की ओर देखा।

चुप खड़े थे तिवारी। चौंककर बोले, "जी हाँ, नासमझ है, क़ाबिले माफ़ी है।"

मुराव बोला, "सरकार, आप क्या जानें ? इस गाँव में ऐसे समझदार लोग भी हैं, जिनके बाल पक गये हैं, पर यहाँ बारी से तरकारियां चुरा ले जाते हैं। बतलाइए, उनके साथ क्या सलूक हो ? यह तो खैर बालक है। पर जो बुड्ढे हो चले हैं...."

इन्द्रदेव चुप रहा।

तिवारी शीघ्रता से बोले, "चलिये, धूप तेज हो रही है।"....

बारी से दूर आ गये तो इन्द्रदेव ने इतनी देर बाद मुँह खोला। दुखी स्वर में कहने लगा, "गरीबी कितनी बुरी होती है। उस लड़के का क्या दोष है ? शायद आज उसके घर में खाने को कुछ न हो, शायद उसकी माँ हाथ पर हाथ धरे उदास बैठी हो। चोरी करना कोई आनन्ददायक चीज नहीं है। आदमी मजबूर होकर ही चोरी करता है। आपका क्या खयाल है ? मैं ठीक कह रहा हूँ न ?',

"जी हाँ, जी हाँ। आप बजा फरमाते हैं" तिवारी ने बहुत शीघ्रता से कहा।

इन्द्रदेव याद करके बोला, "मेरे यहाँ एक नौकर ने अजीब चोरी की। भैया-दूज का मौका था। बहिन हम लोगों के लिये टोकरा भर मीठा लाई थी। रात के बारह बजे खट्-पट् सुनकर जो हम लोगों की नींद खुली और तिदरी में पहुँचे तो देखा कि बुड्ढा रामनाथ अँधेरे में टोकरा खोलकर मिठाई खा रहा है।" इन्द्रदेव ने फिर तनिक हँसकर कहा, "करीब-करीब सब खतम हो चुका था। अब क्या हो? बड़े भाई साहब ने नाराज़ होकर एक लात मारी। पिताजी ने उन्हें डाट-कर रोका, फिर हम लोगों से बोले कि खबरदार, इसपर कोई हाथ न चलाये। यह बिलकुल बेकसूर है। कभी इसे मिठाई दी तुम लोगों ने? अपने पर काबू नहीं रख सका। खतावार तो तुम लोग हो। खुद मिठाई खाते हो और घर में एक दूसरा आदमी, जो तुम्हारी तरह दिल रखता है और तुम्हारी जैसी ही रसना है जिसकी, मिठाई के एक टुकड़े को तरसता है, पिताजी ने रामनाथ को बिलकुल माफ कर दिया। हर समझदार आदमी यही करता, आप भी यही करते, मैं समझता हूँ।"

"जी हाँ जी हाँ।" तिवारी बोले।

सड़क आ गई थी। सामने जनवासा दीख रहा था। लड़कों का झुन्ड हाथियों के आसपास जमा था और कुछ लड़के एक साथ चिल्ला रहे थे—"हाथी-हाथी बार दे! सोने की तलवार दे।"

एक लड़का सामने से कतराकर निकला और तनिक फ़ासले पर खड़ा होकर चिल्लाकर गाने लगा—"बाँके तिवारी बाँकी चाल, लेकर भगा इमरती थाल, पड़ी मार तब हुआ बेहाल, हाय इमरती, तरमां माल!"

इन्द्रदेव ने सुना तो हँसकर बोला, "लीजिये, यह भी कोई रामनाथ का भाई रहा होगा, जिसकी कीर्त्तियां सड़कों गाई जा रही हैं। कविता अच्छी बनाई है किसीने। आपको पसन्द आई?"

"जी हाँ, जी हाँ। बहुत अच्छी है।" तिवारी ने त्रस्तभाव से कहा, "अब आज्ञा दीजिये, घर चलूं।"

मालकिन के आगे अमियों का ढेर लगाकर बाँके तिवारी बोले, "देखो, कितनी खटाई ले आया !"

मालकिन ने पूछा, "तरकारी कहाँ है ?"

अनुनय करके बोले, "भूल गया भाई ! माफी दो। वह ज़मीदार का बड़ा दामाद मिल गया था। माना नहीं वह। हाथ पकड़कर बैठा लिया और हाथ जोड़कर बोला कि बहुत तारीफ़ सुन चुका हूँ आपकी। मेरे श्रवण तृप्त कीजिये।' 'श्रवण कान को कहतें हैं। 'तृप्त कीजिए' यानी 'कुछ सुनाइए'। मेरी जुबान जो खुली तो हक्का-बक्का रह गया। बोला, आप इस गाँव में क्यों पड़े हैं ? वन में मोर नाचा, किसने जाना ? मेरे साथ चलिए न ! ज़िन्दगी भर अपने पास रक्खूंगा। कोई तकलीफ न दूँगा।' वह तो डिप्टी कलक्टर होने वाला है। कहने लगा, 'मुझे आप जैसा आदमी मिले, तो अपना भाग्य सराहूँ। हामी भरिये, मेरे साथ चलिएगा न !' मैंने सोचकर कहा, 'साहब, जब तक मालकिन से न पूछ लूँ आपको पक्का वचन नहीं दे सकता।"

मालकिन ने शान्त स्वर में कहा, "कदर करने वाला मिला तो कदर की। गाँव वाले मूरख, चाण्डाल हैं। तुम्हारा गुण क्या खाकर समझेंगे ! चले जाओ। वह कहता है तो जाने में बुराई क्या है ?"

तिवारी बोले "बड़ी मुश्किल से पिण्ड छोड़ा। फिर मिलने का वादा करवा लिया। चलने लगा तो पैर छुए मेरे।"

मालकिन ने कहा, "उसकी बड़ी उमर हो। कितनी बड़ी जायदाद है उसकी और गुमान छू नहीं गया है, सुनते हैं। यहाँ दो कौड़ी के आदमी आपे से बाहर हो जाते हैं।"

मँझला लड़का बाहर से भागता आया और माँ के कन्धों झुककर बोला, "भूख लगी है अम्माँ !"

तिवारी जैसे स्वर्ग से धरातल पर उतर आए। घबराकर बोले, "लाओ, थोड़ी ज्वार निकाल दो। आलू ले आऊँ कुंदन साव के यहाँ से।"
मालकिन भी ज़मीन पर आ गईं। बोलीं, "ज़रा जल्दी लौटना दया करके।"

तिवारी ने लड़के को साथ लिया और लपकते-झपकते चल दिये अंगोछे में ज्वार बाँधे।....

बाँके तिवारी के बाप पंडिताई करते थे गाँव में। लड़के को उर्दू पढ़ा रहे थे। सोचते थे कि कभी जो मिडिल पास कर सका तो पटवारी हो जाएगा। इससे बड़ी साध और क्या हो सकती थी, पर साध पूरी न हुई। बाप चल बसे और तिवारी का पढ़ना छूट गया। न मिडिल पास कर पाये और न पटवारी हुए। माँ जब तक ज़िन्दा रही, किसी तरह घरगृहस्ती चलाती रही। उसीने हाकिमों से अनुनय विनय करके बाँकेलाल को मदरसे में छोटा मुदर्रिस भी बनवा दिया। वह मरी तो बाँके तिवारी पर उस दिन से मानो सनीचर आ गया। महीना बीतते-बीतते बरखास्त कर दिये गये। किसी लड़के को पाठ न याद करने पर रूल से इस क़दर पीटा कि उसकी कलाई तोड़ दी। हेड मुदर्रिस तो पहले से ही ख़ार खाये था। सो उसने रिपोर्ट कर दी। पन्द्रहवें दिन बाँके तिवारी बरख़ास्त कर दिये गये। पंडिताई करनी आती न थी। नौ बीघा खेत था। उसी पर गुजर चलने लगी। और एक के बाद एक सन्तानें होती गईं और दरिद्रता लाती गईं घर में। गाँव वालों की प्रार्थना पर बिजली का कुआँ बना हार में और तिवारी का चार बीघा खेत काम में आ गया 'ट्यूब' वेल के,तब से और तबाही आ गई।

सरकार से हरजाने में जो रुपये मिले सो औरत की बीमारी में खर्च हो गये। पाँचवीं सन्तान अस्पताल में मृत पैदा हुई। घर में अन्न का दाना नहीं। चांदी के ज़ेवर बेच-बेचकर खाते रहे। ज़ेवर निबट गए तो उधार लेते रहे जिस-तिस से। जब किसी का लौटा न सके तो लोगों ने उधार देना बन्द कर दिया। हालत गिरती गई और मन की वृत्ति निम्न से निम्नतर होती गई

जब इस तरह ज़िन्दगी के चारो ओर खाक उड़ रही थी, कुटुम्ब में एक शादी आ पड़ी। लड़की का ब्याह था। तिवारी चाचा लगते थे। कुछ न कुछ खर्च लाज़िमी था। कहाँ से दें, क्या करें? औरत की नाक में लौंग थी सोने की। आख़िर ढाई रुपये में बेचा और दो रुपये से वर का टीका कर आये और फिर लगे रहे सारी ताकत से काम-काज में। शरीर अपना था सो शरीर खपा रहे थे, कुटुम्ब की लड़की के ब्याह में। दुपहरी भर भट्टी के पास डटे रहे, फिर

बड़े-बड़े बोझ उठा-उठाकर भण्डार में पहुँचाते रहे। फिर जब बारात खाने आ पहुँची तो खुद भूखे-प्यासे रहकर और सबके साथ बारात को खिलाने-पिलाने में जुट गये।

लड़की का भाई भीतर से मिठाइयों के थाल ला-लाकर परोसने वालों को दे रहा था। तिवारी पानी परोस रहे थे। लड़की का भाई भीतर से इमरतियों का थाल लिये आया। इन्हें पानी का गडुआ लिये देखा तो झिड़ककर बोला, "चच्चा क्या कर रहे हो ? पानी धर दो, लो, यह थाल पकड़ो तुम। बाहर फाटक के किनारे बाजे वाले और धीमर रह गये हैं। उन्हें परोस आओ इमरतियाँ।"

तिवारी भरा थाल लिये फाटक के बाहर आये तो वहाँ कोई न था। अंधेरा पड़ता था। इसलिए उन लोगों को किसीने उठाकर भीतर आंगन के एक ओर ही बैठा दिया था। तिवारी चारो ओर आँखें दौड़ाकर देखने लगे। कोई कहीं न था। दूर पर बुढ़िया मेहतरानी गुड़ी-मुड़ी होकर पड़ी थी, जूठन के इन्तज़ार में। दस क़दम पर अपना घर है। सहसा एक विचार आया—यह इमरतियों का थाल अपने घर ले जाएँ। राह में अँधेरा है, दस कदम पर घर है। आगे-पीछे कहीं भी कोई देख नहीं रहा है। यह इमरतियों का थाल झपटकर घर ले जाएँ। हाय, उनके बच्चों ने आज तक कभी इमरतियाँ नहीं खाई हैं। जल्दीं, जल्दी करो!

तिवारी भरा थाल लिये तेज़ कदमों से अँधेरे में आगे बढ़ गए....।

लड़की का मामा तमोली की दुकान से पान-सुरती खाकर लौट रहा था। यहाँ अँधेरा देख हाथ का टार्च जला दिया। गज़भर के फ़ासले पर तिवारी थाल लिये दीखे। टार्च की तेज़ रोशनी उनके पूरे बदन और थाल पर पड़ रही थी वहीं काठ हो गये।

मामा ने अचरज से पूछा, "यह थाल कहाँ लिये जा रहे हो ?"

तिवारी सन्न रहे। मामा ने आगे बढ़कर बाँह पकड़ ली। शान्त स्वर में कहा, "इधर आओ।" और टार्च की रोशनी आगे फेंकते तिवारी को फाटक की ओर ले चले....

बारात चली गई फिर वहीं पुराना ढर्रा चलने लगा सब का। पर इमरतियाँ के थाल की बात जैसे अजर-अमर हो गई। जाने कैसे और जाने किसने वह कविता बनाई और मुहल्ले के, गैर-मुहल्ले के हर लड़के को वह याद हो गई और हर लड़का जब तिवारी को देखता तो ज़ोर से गा उठता—"बाँके तिवारी, बाँकी चाल। लेकर भगा इमरती थाल...."

यह मानो पतन का श्रीगणेश था। दरिद्रता आदमी को वेहया बना देती है। मान-अपमान का बोध ही मन से निकल जाता है। बेहया और बेग़ैरत इसी प्रकार आदमी हो जाता है। तिवारी का भी वही हाल हुआ।

बकरी पाल ली थी। छोटा बच्चा दूध पीता था। बड़ों को भी थोड़ा-थोड़ा मिल जाता था। तिवारी उसके लिये घास-पत्ती बीन लाते थे। एक दिन इसी प्रकार गट्ठर बाँधे तिवारी को अपने खेत से निकलते गेंदनलाल कुर्मी ने पकड़ लिया। गट्ठर खुलवाकर तलाशी ली तो उसके भीतर बाजरे की पच्चीस बालियाँ बँधी निकलीं।

वह तो थाने लिये जा रहा था। लोगों ने छुड़ा दिया।

एक दिन फिर एक मुराव ने रंगे हाथ पकड़ा। आलू खोद रहे थे आड़ में बैठे। फिर ताल में सिंघाड़े तोड़ते पकड़े गये। धीमर ने पकड़ा। बड़ी लानत-मलामत की उसने।....

अन्त में यह स्थिति हो गई कि लोग तिवारी को कहीं आता-जाता देख एक-दूसरे से पुकार कर कहने लगे—'होशियार रहना चोर उचक्के गाँव में बहुत बढ़ गये हैं!' तिवारी सब का व्यंग्य सुनते, छिपी गालियाँ सुनते, लड़कों का गीत सुनते। पर सब कुछ जैसे कानों तक ही रह जाता। मौक़ा पाते तो हाथ साफ़ करने से बाज़ न आते। गनीमत थी कि कभी किसी ने उनपर हाथ न चलाया। पर अगर कोई उन्हें पीटता तो पीट भी लेते चुपचाप। यह उनके पतन की चरम सीमा थी। उनके मनुष्यत्व का गला घोंट दिया था किसी ने। कभी भर-पेट अन्न मिलता, कभी आधे-पेट रहते। किसी दिन निराहार रह जाना पड़ता। सारे दिन मारे-मारे फिरते। मौक़ा पाते छोटी-मोटी चोरी कर लाते और बच्चों के साथ बैठकर खा-पी लेते।

पहले आत्मा उन्हें धिक्कारती थी। फिर अनमनी होकर उदास होने लगी। फिर मूक हो गई एक दिन। बच्चों के कुम्हलाए मुख उन्हें सब कुछ करने को विवश कर देते। पढ़ना-लिखना छूट गया। ज़िन्दगी ऊसर हो गई थी। परन्तु तिवारी को हिन्दी के कवित्त और उर्दू की गज़लें हज़ारों की संख्या में याद थीं। यही मानों मनुष्यत्व का चिन्ह उसके पास बाक़ी रह गया था। अक्सर लोगों को हिन्दी-उर्दू की कविताएँ सुनाकर मुग्ध कर देते थे।

खेत जो कुछ बच रहा था, उसे अधिया पर दे देते थे। बैलों की जोड़ी खरीद नहीं सकते थे। खुद काश्त करते तो कैसे करते? जब तक अन्न घर में रहता, मौज से बैठे खाते। आलस्य और काहिली ने आ घेरा था।

जाड़ों में शहर का एक बनिया लोगों की ईख खरीदने आया था। उससे जान-पहचान हो गई। दस कोस पर उसकी बहुत भारी गुड़-राब की खरीद हो रही थी। तिवारी को उसने हिसाब-किताब लिखने पर नियुक्त कर दिया। तिवारी ने वहाँ भी हाथ साफ़ किया। कई घड़ी गुड़ वहाँ से उड़ा लाए। एक मटका राब पत्तों में छिपा रक्खो थी और घर लाने की फिक्र में थे। पकड़ लिये गये। बनिये ने उनका हिसाब करके जवाब दे दिया।....

उस साल खेत में बाजरे-ज्वार की पैदावार अच्छी हुई थी। जाड़े भर तिवारी ने गुड़ से बाजरे की रोटियाँ खाईं और अब ज्वार खा रहे थे। नौकरी वाले रुपये निबट गये थे। अब पैसों की ज़रूरत पड़ती तो ज्वार बेचकर काम चलाते थे। सो वही ज्वार लेकर आलू खरीदने गये थे....।

कुन्दन साव के यहाँ आलुओं का ढेर लगा था। आलू सड़ने लगे थे, इसलिए वह सस्ते भाव में बेच रहा था। साव ने ज्वार तौली और फिर हिसाब करके आलू तोलने लगा। तिवारी अंगोछा फैलाए बैठे थे। पास आलू का ढेर था। अँगोछे पर आलू डाल कर साव किसी दूसरे ग्राहक से बातें करने लगा। मौक़ा पाकर तिवारी ने तीन-चार बड़े-बड़े आलू जल्दी से अपने आलुओं में डाल लिये और अँगोछा लपेट कर चल दिये। वह ग्राहक देख रहा था। तिवारी उठ गये तो उसने साव से कहा। पर साव हँस दिया। बोला, "उनकी चोरी करने की आदत

पड़ गई है। पढ़ा-लिखा आदमी है। भाग्य की बात है कि उचक्का हो गया है अब। पहले मदरसे में पढ़ाता था।"

इधर तिवारी ने बाहर लड़के का हाथ पकड़ा और लम्बे डग भरने लगे....।

राह में जमींदार की चौपाल पड़ी। इन्द्र देव ऊपर मूढ़े पर बैठा था। इन पर नज़र पड़ी तो उठकर खड़ा हो गया और आदर से बोला, "आइए, आइए!"

तिवारी ने आलू लड़के को थमाकर भेज दिया और आप चौपाल पर चढ़ आये। इन्द्रदेव ने दूसरा मूढ़ा खींचकर बैठने का इशारा किया और नम्र भाव में कहने लगा, "मैं खाने जा रहा था। चलिये भोजन कर लीजिये।"

तिवारी हाथ जोड़कर बोले, "बस, अभी-अभी खाकर आ रहा हूँ। आप जाकर जीमिए।"

नौकर इन्द्रदेव को भीतर ले जाने के लिए खड़ा था। इन्द्रदेव ने सकुचाकर कहा, "लेकिन आप उठ मत जाइएगा। मैं दस मिनिट में आता हूँ।"

तिवारो हँस कर कर बोले, "मैं बैठा रहूँगा।"

इन्द्रदेव तेज़ी से नीचे उतर गया। पर नौकर न गया। उसने चौपाल में चारों ओर निगाह दौड़ाई। जमाई बाबू का रेशमी कुरता टँगा था और कुरते में शायद सोने के बटन लगे थे। सँभालकर नौकर ने कुरता उतार लिया। तिवारी की ओर देखकर मुसकराया और धीर गति से चला गया।

तिवारी के मुँह से अनधाने एक लम्बी साँस निकल गई, सामने के नीम को ताकने लगे....।

आध घंटा बाद एक दूसरा नौकर तिवारी को भीतर हवेली में बुला ले गया। भण्डार-घर के आगे इन्द्रदेव कुर्सी पर बैठा था और एक कुरसी तिवारी के लिए रखवा ली थी। इन्द्रदेव ने पान खाते-खाते कहा "तशरीफ़ रखिए। मैं तो भण्डारी बना दिया गया। इस समय मनों मिष्ठान का स्वामी हूँ लीजिये पान खाइये।"

तिवारी ने आज जाने कितने दिनों बाद पान खाया। माथे पर पसीना आ गया और दिमाग़ ख़ुशबू से भर उठा।

इन्द्रदेव ने हँसकर कहा, "हम लोगों को ड्यूटी अच्छी मिली। तरह-तरह की मिठाइयों की सुगन्ध लेते रहेंगें। अच्छा, अब कोई 'देव' का कवित्त सुनाइए। वह सुनाइए तो, 'राधे कही है....'

तिवारी 'देव' कवि की कविता सुनाने लगे। फिर इन्द्रदेव ने सुनाया, फिर तिवारी ने सुनाया, फिर इन्द्रदेव ने, फिर तिवारी ने। कविता के रस ने मानो दोनों व्यक्तियों को पागल कर दिया हो। कई घण्टे बीत गये। नशा-सा चढ़ आया था। झूम रहे थे दोनों कि नौकर ने दौड़े आकर खबर दी, "बारात में झगड़ा हो गया! लड़के वाले अपने घर लौटे जा रहे हैं!"

चुप होकर दोनों उस नौकर का मुँह देखते रह गये।

तभी ज़मींदार राम नारायण घबराये हुये आये और इन्द्रदेव के हाथों में एक भारी थैली देकर बोले, "इसे सँभालिए। मैं जनवासे तक जा रहा हूँ।"

"कितनी रक़म है इसमें ?" इन्द्रदेव ने ससुर के चिन्तातुर मुख पर नज़र जमा कर पूछा।

"कुछ याद नहीं है।" ज़मींदार ने जल्दी-जल्दी कुरता पहनते हुए कहा और पलक मारते बाहर हो गये।

घर-भर में कुहराम-सा मचा था।

कविता बन्द हो गई थी और इन्द्रदेव किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सब की ओर ताक रहा था।

तभी ज़मींदार की बड़ी लड़की यशोदा दौड़ी हुई आई और पति से काँपती ज़ुबान में कहा, "तुम यहीं बैठे हो! लड़के वाले नाराज़ होकर लौटे जा रहें हैं! बाबूजी का क्या हाल होगा ? यहाँ बैठे क्या कर रहे हो ? जनवासे जाओ न भागकर। लड़का तुम्हारा परिचित है। उसीको जाकर समझाओ। हे भगवान! कुछ करो जल्दी!"

इन्द्रदेव ने सान्त्वना के स्वर कहा, "घबराने की क्या बात है ? मैं जा रहा हूँ। तुम अम्माँ को सम्भालो। कहाँ हैं ?"

"रो रही हैं।" यशोदा ने कहा और खुद भी रोने लगी।

इन्द्रदेव ने झटके के साथ खूँटी से अपना कुरता खींचा और पैरों में चप्पल डालता बोला, "शान्ति रक्खो। जाओ, अम्माँ को समझाओ।"

यशोदा आँसू पोंछती माँ के पास चली गई। इन्द्रदेव ने वह रुपयों की थैली तिवारी की गोद में रखकर कहा, "इसे आप सँभालिए। मैं वहाँ जा रहा हूँ भंडार पर नजर रखिएगा। मैं जल्दी ही लौट आऊँगा। आप को थोड़ा कष्ट दे रहा हूँ।"

इतनी देर बाद तिवारी ने होठ खोले। बोले, "कष्ट कैसा ? यह तो मेरा फ़र्ज़ ही है यह थैली आप बिटिया-रानी को दे जाते...."

इन्द्रदेव ने आश्चर्य से कहा, "क्यों ?"

तिवारी ने निरुत्तर होकर सिर झुका लिया।

घण्टा-डेढ़ घण्टा बीत गया जनवासे से कोई न लौटा। जो गया सो वहीं रह गया। यशोदा माँ को बेसुध देखकर फिर इधर घबराई हुई आई। आँगन में सन्नाटा छाया था। तिवारी अकेले कुर्सी पर बैठे जाने क्या सोच रहे थे।

यशोदा उनके पास आकर करुण स्वर में बोली, "चच्चा, कुछ खबर तो लाओ। क्या कर रहे हैं सब ? अम्मा बेहोश हो गई हैं। अब मैं क्या करूँ ?" और फल-फल उसकी आँखों में आँसू भर आए।

तिवारी का दिल हिल गया। यशोदा के सिर पर हाथ फेरकर बोले, "रोओ मत मेरी लाड़ली ! लो, मैं अभी खबर लेकर आता हूँ।" और वह थैली यशोदा को देने लगे।

यशोदा ने सिर हिलाकर कहा, "मेरी अकल तो यों ही गुम हो रही है तुम इस जंजाल को अपने पास ही रक्खो। तुम्हें दे गए हैं, तो तुम्हीं सँभालो। चच्चा, जल्दी लौटना। तुम भी जाकर मत बैठ रहना।"....

सरगुजावाले ठाकुर रिटायर्ड कोर्ट इन्सपेक्टर थे। शुरू से ही शराब के आदी थे। सर्विस में बराबर पीते रहे और अब भी रोज पीते थे। घर पर शाम को ही दौर चलता था। यहाँ लड़के की बारात लेकर आये तो दिन में भी बार-बार पीते रहे। नशा अपने चढ़ाव पर था। तभी माईस ने आकर खबर दी कि लड़की वालों ने उनकी तौहीन कर दी अभी।

साईस घोड़ियों के लिये घी माँगने गया था। उसे लड़की वालों के किसी आदमी ने जवाब दिया, "खुद चाहे कभी घी न खाते हों। बारात लाये तो घोड़ियों के लिए घी माँग रहे हैं! टुच्चे खानदान के हैं न!"

घोड़ियों के लिए घी न मिला। साईस दुखी होकर लौट आया। अपने मालिक की शान में ऐसे अल्फाज़ सुनकर उसका कलेजा टूट गया।

कोर्ट साहब ने आँखें लाल करके कहा, "कौन वह दोगला है, जिसने हमारे नौकर से यह बात कही? हम अभी उसकी खाल उतार लेंगे। बुलाओ उसको! हमारे सामने आसामी को पेश किया जाए!"

रामनारायण के साले ने उस साईस को फटकारा था और उस धूर्त साईस को लक्षित करके घी का व्यंग्य किया था। पर नौकर ने बात बदल दी और अपने अपमान का यों बदला लिया।

तिवारी जनवासे में पहुँचे तो अजीब समाँ देखा। कुछ तम्बू उखड़ गये थे, कुछ लोगों के बिस्तर बँध गए थे और कुछ अपनी छोलदारियों में गप-शप कर रहे थे।

समधी के शामियाने के आगे कुछ भीड़ थी और कुछ भीड़ इधर थी महादेव जी के मन्दिर के पास। इन्द्रदेव एक किनारे यशोदा के मामा से बात कर रहा था। तिवारी वहीं जा खड़े हुये।

मामा प्रौढ़ व्यक्ति थे और तिवारी के हमउम्र होंगे। चेहरा-मोहरा भी ऐसा ही कुछ था। बेचारे बहुत लज्जित थे और इन्द्रदेव से कह रहे थे कि 'भाई, मुझे तुम लोग कोर्ट साहब के सामने पेश कर दो न! जो कुछ सज़ा देंगे, मैं सह लूँगा।'

इन्द्रदेव ने कहा, "यह हरगिज़ न होगा। वे शराबी आदमी हैं और इस वक़्त नशे में हैं। आपके साथ जो कहीं कुछ गड़बड़ी कर बैठे तो हम लोगों से कैसे सहा जाएगा? मान लीजिए कि गाली देने लगे, हाथ चला बैठे, तो?"

मामा ने कहा, "मैं पिट लूँगा बेटा!"

"हरगिज़ नहीं," इन्द्रदेव ने कहा, "शाम होने को आई। पर उनकी मोटी अक्ल में इतनी-सी बात नहीं आ रही है कि नौकर झूठ बोला है। वह खुद घी

छिपाकर ले जाना चाहता था। कैसी बेवकूफी की बात है! बुड्ढा अपनी ज़िद पर अड़ा है कि 'उस आदमी को मेरे सामने पेश करो! अजी, आप लोग चुप रहिए। अब नशा उतार पर है। खुद सँभल जाएँगे कोर्ट साहब। लड़का बेचारा कितना शर्मिन्दा हो रहा है!"

दो गज़ की दूरी पर रामनारायण अपने बड़े भाई से बातें कर रहे थे और चारों ओर से सब लोग उन्हें घेरे हुए थे। सहसा उन्होंने इन्द्रदेव को पुकारा।

तिवारी तब से सब सुन रहे थे और अब नत-शिर बैठे मामा की ओर बार-बार देख रहे थे कि बगल से बाराती नौकर यह कहते निकले कि 'सब सामान गाड़ियों पर लादो। सरकार का हुक्म है। जल्दी करो। सूरज डूब रहा है। अभी कूच होगा।'

तिवारी ने नौकरों को उधर गाड़ियों की ओर जाते देखा, फिर नत-शिर मामा की ओर फिर उतरा मुख निराश, भीत दृष्टि लिए ज़मीदार रामनारायण की ओर देखा। और तब चोट खाकर मामा से बोले, "ठाकुर साहब ज़रा अपनी टोपी दे दीजिए। ज़रा मैं कोर्ट साहब का दर्शन कर आऊँ। नंगे सिर नहीं जाना चाहिए।"

मामा सीधे-साधे आदमी थे। हँसकर अपनी टोपी तिवारी को दे दी। तिवारी ने सबकी नज़र बचाकर वह रुपयों वाली थैली मामा की गोद में जल्दी से रख दी और हौले से कहा, "इसे सँभाले रहिए। मैं अभी आया।" और जब तक मामा कुछ कहें, तब तक कोर्ट साहब के तम्बू में घुस गये....।

इन्द्रदेव मामा के पास फिर लौटकर आया तो चेहरा उसका बहुत उदास था। मामा करुण हँसी हँसकर पूछने लगे, "क्यों, क्या हुआ ?"

इन्द्रदेव दुखी स्वर में कहा, "मैं इसे पसन्द नहीं करता। बाबूजी के बड़े भाई कह रहे हैं कि हम अपने नौकर को कोर्ट साहब के आगे भेज दे रहे हैं। वे उसका जो कुछ चाहें कर लें। कह देंगे, 'साहब, यही वह आदमी है।' आप बतलाइए, मामाजी, यह कोई उचित बात है ? वह नौकर भी तो आखिर आदमी है और अपनी कुछ इज़्ज़त रखता है। वह भला दूसरे का अपराध अपने सिर लेकर क्यों पिटे ? यह तो साहब, सरासर पाप है।"

मामा कुछ कहने ही वाले थे कि देखा कि रामनारायण और रामनारायण के भाई दोनों कोर्ट साहब के तम्बू की ओर लपके जा रहे हैं और पीछे से भीड़ भी दौड़ती चली जा रही है।

ये दोनों भी उधर ही को दौड़े....।

दो चार आदमी ही भीतर डेरे में घुसे थे। बाकी भीड़ को दो बलिष्ठ नौकर पीछे ढकेल रहे थे। ये दोनो जने भी भीतर दाखिल हो गये।

डेरे में यह दृश्य था कि मशहरी पर मसनद लगाये, नोकदार मुछें और लाल आँखें लिये कोर्ट साहब बैठे थे। एक हाथ में फर्शी की रंगीन निगाली थी और दूसरा हाथ पैर के उपर था। बाईं ओर लड़की वाले स्तब्ध होकर खड़े थे और दाईं ओर बाँके तिवारी थे। मामा की काली टोपी लगाए, बाँके तिवारी जमीन पर मुर्गा बने उकड़ूं बैठे थे। चेहरे पर सारा खून उतर आया था और पीछे का धड़ ऊपर को उठाए थे।

इन्द्रदेव सहमकर खड़ा रह गया, साईस हाजिर था। कोर्ट साहब ने गम्भीर स्वर में उसे हुक्म दिया, "इसकी पीठ पर जूता मारो!"

जमींदार रामनारायण ने तड़पकर कहा, "खबरदार!" और तड़ित् वेग से समधी के आगे आकर बोले, "आप चाहें तो मेरे सिर पर जूते मरवा सकते हैं। यह ब्राह्मण है। इसके शरीर को कोई छुएगा तो मैं उसकी जान ले लूंगा!"

कोर्ट साहब ने हकलाकर कहा, "आपका....यह....नौकर है?"

"जी नहीं," जमींदार ने दृढ़ता से कहा, "उसके बाप पंडित थे गाँव के। और यह भी मास्टर था।" और उन्होंने नीचे झुककर तिवारी के हाथ खोल दिए। बाँह पकड़कर उन्हें खड़ा किया।

तिवारी का चेहरा लाल-सुर्ख था और पसीना बह रहा था धारों से। जमींदार रामनारायण ने विह्वल होकर तिवारी का चरण-स्पर्श कर लिया और रुँधे कण्ठ से बोले, "मेरी विपत्ति बचाने के लिए तुमने अपनी 'बलि' दे दी। अब कैसे तुमसे उऋण हो पाऊँगा? तिवारी, तुमने यह क्या कर डाला?"

सहसा सबने देखा कि कोर्ट साहब अपने पलँग से उतर रहे हैं? क्या करेंगे अब?

कोर्ट साहब आगे बढ़ आए। एक बार तिवारी का रक्तिम मुख निहारा और फिर नीचे झुककर उनकी चरण-रज माथे से लगा ली और दोनों हाथ जोड़कर अपराधी के स्वर में बोले, "मुझे माफी दो महाराज! मैं बड़ा पापी हूं।" फिर समधी की ओर मुखातिब होकर बोले, "आपके यहाँ अब लड़के की शादी मैं सिर्फ इस शर्त पर करूंगा कि यह हीरा आदमी आप मुझे दे दें। इन्हें मैं अपने पोतों का गुरु बनाकर रखूंगा। कहिए, मंजूर है?" ज़मींदार ने हँसकर तिवारी की ओर देखा। तिवारी ने प्रसन्न भाव से कहा, "मुझे मंजूर है। खिदमत में एक शेर अर्ज़ करता हूं:

अपने सर ले लिया महशर में खता को उनकी,
मुझसे देखा न गया उनका परेशां होना!"

★

रस-बूँद

पछाँही गाँव था। आबादी काफी थी और शहर से सीधा सम्बन्ध था। मोटर, लारी, इक्का, ताँगा बीच से होकर गुजरते थे, पक्की सड़क लगी थी। सब चीजें मिलती थीं। आटा-दाल, मसाले, मेवे, कपड़े, खिमातखाने सभी की दूकानें थीं, मिठाई भी बनती थी।

मिठाई की दूकान गंगासहाय की थी। पहले बाप बैठते थे। बड़ा पैसा पैदा किया उन्होंने। पक्का मकान बनवा लिया। बाप मर गये, तब से गंगासहाय दूकान चला रहा है।

वह बाप का अकेला है, उसका बेटा भी अकेला है। बेटा मदरसे में पढ़ता है उसे सब ',लल्ला'' कहते हैं, बहुत लाड़-प्यार है।

लेकिन कुनबा बहुत बड़ा है। कुनबा—यानी चाचा ताऊ; चचेरे-तयेरे, चाची-ताई, बुआ-जीजी, भतीजे-भतीजी।

उनमें कुछ अमीर हैं, कुछ गरीब हैं। यह अमीरी-गरीबी पास-पास रहने से और भी स्पष्ट हो उठती है। दिन-रात, चौबीसों घण्टे सब कोई महसूस करते हैं, अमीर अपनी अमीरी और गरीब अपनी गरीबी। यह अमीरी-गरीबी शाश्वत नहीं है। पहले तो सब एक ही घर के थे—एक-सा ही खाते-पीते, पहनते थे। एक दिन जो चतुर थे उन्होंने अपना कर्तव्य पहचान लिया। वे अमीर हो गये। मूर्ख लोग एकता और समानता को पकड़े रहे। वे अब गरीब हैं। गंगासहाय के दादा मूर्ख न थे, गंगासहाय अमीर हैं—गंगासहाय का लल्ला भी अमीर है।

मूर्खों में एक थे लेखराज। उनका बेटा फल भुगत रहा है, उनका नाती अभी से गरीब है। उमर उसकी मुश्किल से आठ नौ साल की होगी, लेकिन इससे क्या ? वह गरीब बन गया है।

वह भी अपने बाप का अकेला है, उसकी माँ भी उसका लाड़-प्यार करती

है। रामचरन नाम है—"रमचन्ना" कहकर सब पुकारते हैं। केवल माँ लल्ला कहती है। उसका मकान पुराने खण्डहर के बीच बूढ़े भिखारी की तरह खड़ा है। उसके बाप की दूकान नहीं है। बाप नौकर है। शहर में किसी की दूकान पर।

जाड़ा उतर रहा था। उस दिन मदरसे की छुट्टी थी। लड़के मजे में इधर-उधर घूम रहे थे। लल्ला के अनेक संगी-साथी हैं। रमचन्ना भी दर्जे में साथ पढ़ता है, भाई लगता है। भाई है तो क्या हुआ—उसका पक्का मकान है, उसके बाप की दूकान है, उसके पास ऐसे कपड़े हैं ? लल्ला उससे दोस्ती नहीं रखता। उसकी अम्मा ने मना कर दिया है, अलग रहा करो इससे। उसे दोस्तों की क्या कमी है ! उसकी मीठे की दूकान है। बाप से माँगकर चाहे किसी दिन सबको मीठा बाँट देता है। सब साथी कृतज्ञ हैं।

पास की गली में "इक्की-दुक्की" खेली जा रही थी। लल्ला सरदार था। सिरके से बासी रोटी खाकर रमचन्ना भी घूमता हुआ आ पहुँचा। खेल दुबारा शुरू हो रहा था। लल्ला से घिघियाकर कहा, "भैया हमें भी खिला लो।"

वह लल्ला से "भैया" ही कहता है, अम्मा ने कह दिया है कि नाम कभी मत लेना।

लल्ला ने कहा, "भाग जा कनेटा ! तुझे नहीं खिलाऊँगा।"

खेल शुरू हो गया। रमजन्ना खड़ा देखता रहा।

पर तीन-चार मिनिट पीछे ही विघ्न पड़ गया। बेईमानी की थी लल्ला ने, विपक्षी लड़का बिगड़ गया। लल्ला ने कहा, "तो मत खेलो !" वह खेल रुक गया।

एक ने सोचकर कहा, "अच्छा, 'घोड़ी-घोड़ी' खेला जाय।"

"लेकिन पहले घोड़ी कौन बनेगा ?"

"अरे, रमचन्ना जो है !"

लल्ला ने कहा, "तुम अगर घोड़ी बनो पहले तो तुम्हें खिलायेंगे।"

रमचन्ना ने कहा—"फिर मैं भी चढ़ूँगा।"

लल्ला ने कहा, "हाँ, चढ़ना।"

रमचन्ना घोड़ी बन गया। और लड़के बारी-बारी ने उसकी पीठ पर बैठकर

गेंद उछालने लगे। किसी से भी गलती न हुई। रमचन्ना उसी तरह झुका रहा। सबको पीठपर चढ़ाता रहा। अन्त में लल्ला की बारी आयी। वह रमचन्ना की पीठ पर कूदकर बैठा, ठीक जिस तरह कि घोड़ी पर बैठते हैं। रमचन्ना की कमर लचक गयी। लल्ला ने उसकी खोपड़ी पर एक धौल जमायी और कहा, "बच्चू, ठीक तरह से रहो।" और गेंद उछालो। गेंद छूट गयी। लड़के तांली पीटकर चिल्ला उठे;' 'चोर-चोर, लल्ला चोर !"

लल्ला पीठ पर से उतर पड़ा। रमचन्ना खुश होकर अपना लाल मुँह लिये सीधे खड़ा हो गया। लल्ला पर सबसे पहले वही सवारी करेगा। कूदकर बोला, "भैया, अब चलो, मैं चढ़ूँगा।"

तो लल्ला को ख्याल आया। फौरन डाँटकर कहा, "भाग जा कनेटा, मैं चढ़ूँगा ! मुंह तो देखो।"

रमचन्ना बड़ा खिन्न हुआ, चेहरा उतर गया। तब से सब को 'सवारी' दे रहा था, उसकी बारी आयी तो डपट दिया।

लड़के खूब प्रसन्न हुए, बोले, "खूब सवारी मिली, खूब चढ़े हम तो।"

एक ने कहा, "अच्छा, एक बार और। अच्छा रमचन्ना इस बार बेईमानी नहीं होगी, तू बन तो जा घोड़ी।"

वह रमचन्ना का हाथ पकड़कर उसे झुकाने लगा। रमचन्ना, रुआँसा होकर एक किनारे को हट गया।

लल्ला को बड़ा मजा आया। साथियों से कहा, "चलो, सब को पेड़े खिलायेंगे दूकान पर।"

सब लड़के चल दिये। पीछे-पीछे उदास होकर रमचन्ना भी चला।

लल्ला ने दूकान पर चढ़कर बाप से पेड़े माँगे। फिर क्रमशः सब लड़कों को देने लगा। वह खुद मिठाई नहीं खाता। जी भर गया है खाते-खाते।

चुपके से रमचन्ना पीछे जा खड़ा हुआ था। पर उसे पेड़ा में हिस्सा नहीं मिला। लल्ला की इच्छा नहीं हुई। रमचन्ना सतृष्ण आँखों से देखता ही रहा। लड़के पेड़ा खाकर चले गये।....

जलेबी बनानी थी। गंगासहाय चीनी [illegible] रहा था। भट्ठी सुलग

रही थी और बड़ी-सी लोहे की कड़ाही में दस-बरह सेर चीनी "बुद्बुद्" करके फदक रही थी। जब उफान आता तो गंगासहय दूध का छींटा मार देता और कड़ाही में करछूल घुमाकर लौट-पौट देता।

रमचन्ना को जाने कब से मीठा खाने को नहीं मिला है।

उसी तरह ललचाता खड़ा था और प्यासी आँखों से मिठाइयों की ओर देख रहा था।

गंगासहाय किसी काम से भीतर उठकर गया। कड़ाही के अलग-अलग रस की बूँदें टपकी थीं, टपककर जमीन पर जम गयी थीं। रमचन्ना की नजर जा पड़ी। बढ़ गया और अँगुली से उठाकर उन बूँदों को चाटने लगा। सब चाट लीं।

गंगासहाय लौट आया। उफान आ रहा था। जल्दी से करछुला से टाला, दो-चार बूँदें फिर गिर गयीं आस-पास। रमचन्ना खड़ा था। डरते-डरते गंगासहाय चाचा के सामने ही उसने अँगुली से उठाकर रस की बूँदें चाट लीं। चाचा नहीं बोले। बड़ा खुश हुआ मन में। खड़ा-खड़ा देखता था। कोई बूँदें गिरती थी तो फौरन अँगुली से उठाकर चाट लेता था।

अन्त में चाशनी तैयार हो गयी। गंगासहाय ने दोनों कुंडे कपड़े से पकड़े और कड़ाही उतार कर नीचे धर ली। वह पीढ़े पर बैठकर उसे घोंटने लगा।

रमचन्ना भी इधर आ खड़ा हुआ। शायद कोई बूँद गिरे।

गंगासहाय फिर दूकान के भीतर काम से उठ गया। रमचन्ना ललचा रहा था। चाशनी स्थिर थी, अब बुदबुदे नहीं थे। इस किनारे पर कुछ चीनी लगी थी। वह पककर खस्ता हो गयी थी। रमचन्ना ने चुपके से छुटाकर खा ली। फिर उधर से भी छुटायी।

गंगासहाय ने आते-आते देख लिया। कुछ नहीं कहा। रमचन्ना जल्दी से खड़ा हो गया, खड़ा होकर देखने लगा। तीन-चार बूँदें गिरीं।

चट से चाट लीं। फिर खड़ा-खड़ा देखने लगा।....

एक गाहक आ गया। गंगासहाय उसे सौदा देता रहा। रमचन्ना खड़ा रहा। वह चला गया तो फिर गंगासहाय चाशनी के पास आया। अँगुली से छूकर देखा,

तार बँघता है कि नहीं। तब तक कहीं एक बूंद टपक गयी। रमचन्ना झुका और चाट ली।

कोई पास-पड़ोस में न था। अब गंगासहाय ने रमचन्ना की तरफ देखा और इशारा किया। पर रमचन्ना को विश्वास न हुआ। क्या कड़ाही में से ले लेने को कह रहे हैं।

गंगासहाय ने फिर आँख से इशारा किया और हाथ उठाकर बताया कि इस तरह कड़ाही की चाशनी में मैं रस का चूल्लू भर लो!

रमचन्ना डरता-डरता कड़ाही के पास बैठ गया।

गंगासहाय ने उत्साहित किया, "ले!"

इस तरह चुल्लू भरकर!

तब प्रसन्न होकर रमचन्ना ने हाथ वढ़ाया। और आग की तरह जलती चाशनी में, जो देखने में शीतल लगती थी, रमचन्ना ने उत्साहित होकर अपना छोटा-सा हाथ जल्दी से डाल दिया।

चुल्लू-भर रस के लिए!

पर रस नहीं ले सका। उसी क्षण जोर से चीत्कार करके चाशनी में जली अँगुलियाँ छिटकता "अरी अम्मा री-हाय अम्मा!" कहता घर की ओर भाग चला।

गंगासहाय ने धीरे से कहा, "साले!"

फिर वह चलेबी बनाने बैठा।....

माँ अभी तक चक्की पीस रही थी। रमचन्ना जलन से बेकल था। घुसते ही फौरन पानी के घड़े में हाथ घुसेड़ दिया और जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। माँ ने सुना तो चक्की पर से दौड़ी आयी "क्या हुआ?"

रमचन्ना ने रोते-रोते कहा, "हाथ जल गया है मेरा।"

"कैसे जल गया?"—माँ ने घबराकर कहा, 'देखूं तो, कहाँ जला लाया अभागे!"

पर रमचन्ना ने नहीं बताया कि किस तरह वह जला।

माँ ने धीरे से बाँह पकड़कर जब हाथ घड़े से बाहर खींचा तो देखकर चिल्ला उठी. "मैया री, हाय-हाय रे !" जाने कैसी कातर दृष्टि हो गयी ।

रमचन्ना के पूरे हाथ पर फफोले उभर आये थे, पूरा हाथ भरा था ।

करुणा स्वर से पुकारकर कहा, "चाची, ओ चाची !"

सामने के घर में एक अहीरिन आ बसी थी । पुकार सुनकर वह दौड़ी आयी । माँ ने रोकर कहा, "देखो तो, जाने कहाँ पूरा हाथ जला लाया है । हाय, क्या करूँ ? क्या लगाऊँ ? आग पड़ी होगी ।"

अहीरिन ने देखकर कहा, "भुन गया है बिलकुल । भला आग न पड़ी होगी !"

रमचन्ना रो रहा था । माँ ने गोदी में बैठा लिया, चुपवाने लगी और कातर वाणी से पूछने लगी, "क्या लगाऊँ चाची ! किसी तरह ठंढ पड़ जाय" ।

अहीरीन ने कहा, "घबराओ मत, मैं अभी चली जाती हूं, मुराव की बारी में केला है, केले का पानी लगाओ, ठीक हो जायेगा ।"....

केले का पानी लगाया, और भी अनेक उपचार किये, पर जलन बन्द न हुई । उस दिन रोटी नहीं बनी । रमचन्ना को बुखार चढ़ आया । उसे दूध पिला दिया । माँ स्वयं निराहार रही ।....

रात को जब उसका फूला हाथ देखकर माँ रोने लगी तो रमचन्ना ने रोते-रोते सब घटना सुनायी ।

"हाय निरदयी !"

माँ ने उसे कलेजे से लगा लिया । अरे, कौन उसके बालक को पकड़कर जबरजस्ती हाथ जलाने को लिये जा रहा है ? गरीब को इतना मत सताओ ! अरे, उसके पास बदला लेने को शक्ति नहीं है, किसी से फरियाद नहीं करेगा । दया करो । उसके भी जान है, माया-ममता है ।

"हाय हत्यारे !"....

रात को दूकान बढ़ाकर जब गंगासहाय घर पहुँचा तो पत्नी को "लल्ला" की खाट के पास बैठा पाया । पूछा, "क्या कर रही हो ?"

"मेंहदी लगा रही हूँ तलवों पर ।"

गंगासहाय ने अपनी खाट पर लेटकर कहा, "सँभालकर लगाना, कहीं उसकी नींद न टूट जाय।"....

....दूर, दूसरे मुहल्ले में अधटूटी खटिया पर लेटा रमचन्ना कहरकर करवट बदकर बोला, "अम्मा!"

"बेटा!"

"नींद नहीं आती। बड़ी आग पड़ी है।

"हाय पुतुआ, मैं क्या करूँ? कैसे तेरा दुःख अपने ऊपर ले लूँ?"

दर्द से रमचन्ना फिर रोने लगा। उसे कलेजे से लगाकर माँ भी रो उठी। बाकी सब गाँव सो रहा था।

हारूँगी नहीं

गरमियों के तापिश-भरे दिन थे और रोज लुयें चल रही थीं। इस समय सूरज सिर पर था और जलती धरती पर नंगे पैरों पुरोहित गंगाराम अँगोछा डाले चले आ रहे थे।

अपनी देहलीज में आकर रुक गये घड़ी-भर। अँगोछे से माथे का पसीना पोंछा, एक लम्बी सी साँस ली, धीरे से कहा, "हे मातेश्वरी!" और फिर आँगन की ओर बढ़े।

सामने, कोठे में खाट बिछी थी और खाट पर उनका इकलौता पौत्र रोगी होकर पड़ा था। दो डग भरकर खाट के पास आ खड़े हुए। बुखार की तेजी से बालक का चेहरा तमतमाया हुआ था ओर वह जल्दी-जल्दी उसाँसें ले रहा था और नयन मूँदे था, बेसुध था बिलकुल।

खाट के किनारे, जमीन पर एक नारी मूर्ति बैठी थी, मैली जीर्ण-शीर्ण धोती में अपनी कोमल काया छिपाये। सलोने, शुभ्र मुख पर आधा घूंघट खींचे, चूड़ियों से रहित नंगे हाथ से पंखा झल रही थी बालक के ऊपर हौले-हौले। यह पुरोहित की अभागिन विधवा पुत्र-वधू थी। कलेजे में दुःख-दर्द छिपाये पुरोहित ने खाँसकर पूछा, 'वैद्य आये थे बेटी? क्या कहते थे?"

तब एक दर्द में डूबी करुण आवाज ने कहा, "कहते थे देशी दवा से बहुत दिन लग जायेंगे अच्छे होते। शहर से इन्जेक्शन मँगवा लो- तो इन्जेक्शन लगा दूँ, चार-पाँच दिन में उठकर खेलने लगेगा। कहते थे, साढ़े सत्तरह रुपये में तीन इन्जेक्शन आ जायेंगे।"

"ठीक है। पैसा मिलते ही इन्जेक्शन मगवाऊँगा मैं। आज सप्ताह पूरा हो जायेगा चंडी-पाठ करते। शाम को कहूँगा बड़े ठाकुर से। जमींदार के पोते का भी यही हाल है बेटी, चारो ओर बच्चे बीमार पड़े हैं पता नहीं, भगवती की क्या इच्छा है! हे मातेश्वरी! तुमने भोजन कर लिया बेटी?"

कोई उत्तर न मिला। पुरोहित ने मोह-भरी वाणी से कहा, "भोजन करो बेटी, कल भी तुमने कुछ नहीं खाया। मुझ पापी को देखो, बालक दस दिन से निराहार पड़ा है और रोज जमीदार के यहाँ फलाहार कर रहा हूँ। उठो बेटी ऐसी कब तक भूखी रहोगी ? बालक तुम्हारा चंगा हो जायेगा। हमने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया। भगवान् इतने निष्ठुर क्यों होंगे कि हमारा यह सहारा भी छीन लें। भगवान पर भरोसा रखो बेटी जाओ, खा-पी लो कुछ।"

बेठी धीरे से उठ गयी। पुरोहित घड़ी-भर बच्चे के पास बैठे रहे फिर जाने क्या सोचकर छिपे-छिपे भीतर वाले कोठे में घुस गये और अपना सन्दूक खोलकर कुछ खोजते रहे जाने क्या निकाला उसमें से जल्दी-जल्दी, अँगोछे में लपेटा और भरी दुपहरिया में फिर घर से बाहर हो गये।....

दो बजे पुरोहित अपनी पाठ वाली चौकी पर हाथ-पैर धोकर बैठ रहे थे, ठीक उसी समय कई व्यक्ति एक साथ उस कमरे में घुस आये। सबसे आगे वृद्ध ज़मींदार हरपाल सिंह थे। इन्हें पोथी खोलते देख वह बोले, "आज बड़ी देर कर दी गंगाराम।"

पुरोहित ने सकुचाकर कहा, "जी हाँ, कुछ देर ही गयी सरकार।"

सामने ही रोगी बालक की शुभ्र-धवल शैय्या बिछी थी। सिरहाने पंखा सनसना रहा था बिजली का और एक युवती दासी बैठी धीरे-धीरे पैरों के तलवे सहला रही थी मलमल के टुकड़े से। पीछे आये तीनों व्यक्ति, सीधे बालक के पास जा खड़े हुए। इनमें से एक जमींदार का दामाद भी था, बाकी दो पौत्र और पौत्री थे। ये तीनों नैनीताल में थे और बच्चे के बीमारी की खबर पाकर चले आये थे। दामाद ने एक बार कमरे के चारो ओर नजर घुमाकर देखा और तब उसकी नजर कोने में चौकी पर बैठे, चंडी-पाठ करते पुरोहित गंगाराम पर पड़ी तो अचरज से बोला, "यह क्या तमाशा है ?"—पौत्र देखकर चुप रहा, पौत्री मुख पर रूमाल रखकर हँसने लगी और तब सहसा खद्दर का कुरता-धोती पहने एक हृष्ट-पुष्ट, अधेड़ अवस्था का, रूवाबदार व्यक्ति और आया वहाँ। यह जमींदार के बड़े पुत्र थे, शत्रुघ्न सिंह—रोगी लड़के के पिता। वृद्ध जमींदार धीरे से बाहर निकले और बहनोई ने शत्रुघ्न से पूछा फिर, "यह क्या तमाशा है ?"

पुरोहित गंगाराम जल्दी-जल्दी चंडी-पाठ कर रहे थे। शत्रुघ्न ने उनकी ओर देखकर हँसकर कहा बहनोई से, "यह हमारे बाबूजी वाला इलाज है।"

"आप लोग अभी तक इन अन्ध-विश्वासों को पाले हैं? आश्चर्य है!" शत्रुघ्न ने हँसकर कहा, "अरे भाई आखिर इन पुरोहित लोगों का गुजारा कैसे हो फिर? यह भी तो एक व्यवसाय हैं देश में। जैसे और सब चीजों की दूकानें हैं, इनकी भी एक दूकान है। जैसे पैसे से आटा-दाल खरीदते हैं, पैसे से पुण्य भी खरीद लो, आशीर्वाद खरीद लो, रक्षा कवच खरीद लो। लोग झख मारते हैं और इनके पास आते हैं और फायदा भी उठाते हैं।"

बहनोई ने मानो कोई नई बात सुनी हो, आश्चर्य से बोले, "फायदा भी हो जाता है इस ढकोसले से? इस हरि ओम् से? तब तो फिर ये लोग भी समझो एक प्रकार के डाक्टर ही हैं। इन्हें तो कभी डाक्टर बुलाने की जरूरत ही न पड़ती होगी। घर में आयी बीमारी को ये लोग छू-मन्तर करके उड़ा देते होंगे।"

पुरोहित गंगाराम पाठ करते रहे और सिर झुकाये सब सुनते रहे।

"किस डाक्टर का इलाज चल रहा है बाबूजी? लड़की ने प्रसंग बदला और पिता ने कहा, "डाक्टर मेहता को बुलाया था कल शहर से।"

"डाक्टर मेहता कोई खास होशियार नहीं है, डाक्टर बनर्जी को दिखाना चाहिए था।" बड़े लड़के राजेन्द्र ने राय दी।

"ठीक है। डाक्टर बनर्जी ही सही। कितनी फीस लेते हैं बनर्जी?

"क्या वाहियात बात करते हो यार। ले ले, जितनी चाहे फीस ले। तुम न देना चाहो तो हम देगा मिस्टर। इस बच्चे की तकलीफ तुम गवारा कर सकते हो रुपया खर्च नहीं करोगे धन्य हो जो!,'

बहनोई की बात पर शत्रुघ्न 'हो-हो' करके हँस रहे थे कि नौकर ने आकर अर्ज किया, "सरकार, बरफ आ गयी, लस्सी तैयार है।" तब वे लोग लस्सी पीने चले गये। रोगी को न तो किसी ने छुआ और न यही पूछा कि कैसी तबियत है उसकी।

बड़े कमरे में, नौकर वह फिर आ खड़ा हुआ सामने और शत्रुघ्न की ओर मुखातिब होकर बोला, "सरकार, वे लोग बहुत देर से बैठे इन्तजार कर रहे हैं बाहर।"

"अन्याँ, कौन बैठे इन्तजार कर रहे हैं ?" बहनोई ने पूछा तो शत्रुघ्न ने कुरसी से उठते-उठते कहा, "पार्टी के आदमी हैं।"

""सन् बयालिस का आन्दोलन छिड़ा तब शत्रुघ्न सिंह हिन्दू यूनिवर्सिटी से लॉ कर रहे थे। देश-भक्ति के प्रवल प्रवाह में वे भी आन्दोलन में कूद पड़े। बहुत कुछ करा-धरा। वारन्ट भी कटा उसके नाम, परन्तु बाप की बड़े आदमियों तक पहुंच थी, वारंट वह रद्द करवा दिया किसी तरह। शत्रुघ्न सिंह जेल न जाने पाये, इसका कुपरिणामआज तक भुगत रहे थे। जेल चले गये होते उस समय तो आज जाने कितना फायदा उठाते। बाप की इस मूर्खता को उन्होंने आज तक क्षमा न किया था आन्दोलन शान्त हो गया, फिर वह कांग्रेस के मेम्बर, मंत्री, प्रधान वने फिर देश स्वतन्त्र हो गया तो एम० एल० ए० हो गये। फिर यह दूसरा चुनाव आया तो और ऊपर को उठने को थे, मिनिस्टरी के स्वप्न आ रहे थे कि एक धक्का लगा।

जिले का एक अछूत लखनऊ से एम० ए० कर आया। सहसा उठ खड़ा हुआ इसी सीट के लिए और उस हरिजन ने धुआँधार दौरा किया सारे जिले का और उस कस्बे में आया वह और उसने सब निम्न जाति के लोगों को इकठ्ठा करके सीना तानकर कहा, 'भाइयो, जो तुम्हारे साथ बैठने में परहेज करे, उसे वोट दोगे ? वह तुम्हारा कौन है ? कोई नाता-रिश्ता मानता है तुमसे ? मैं तुमसे पूछता हूँ वह तुम्हारे साथ बैठकर खायेगा कभी ?"

"खाया है—खाया है। हमारे साथ बैठकर खाया है ठाकुर ने !" कुछ आवाज आयीं चारो ओर से।

हरिजन उम्मीदवार ने क्षणभर रुककर कहा, "ठीक है। मैं मानता हूँ उसने तुम्हारे साथ खाया है। लेकिन क्या वह अपने बेटा-बेटी का ब्याह करेगा तुम लोगों के बेटा-बेटी से ? अच्छा कहिए तो उसकी लड़की है कोई ?"

"एक लड़की है—एक लड़की।" कई आवाजें आयीं।

हरिजन ने कहा, "तो सुनो भाईयो, पूछो जाकर उससे, क्या वह अपनी लड़की की शादी करेगा मेरे साथ ? मैं पढ़ा-लिखा हट्टा-कट्टा नौजवान हूँ, काना

कुवड़ा भी नहीं हूँ। मुझमें क्या दोष है? मुझे दामाद बना ले अपना, लो मैं बैठ जाता हूँ चुनाव से।"

भीड़ में सन्नाटा छा गया था कि एक बूढ़े चमार ने उठकर कहा, ऐसी बातें हम नहीं सुनना चाहते। किसी की इज्जत आबरू पर धूल मत उछालो। ब्राह्मण-ठाकुर की बेटी से ब्याह करेंगे! वाह!" और वह वृद्ध चला गया सभा से उठकर।

हरिजन नेता ने हँसकर कहा, "इन सवर्ण हिन्दुओं ने तुम्हारी आत्मा का हनन कर दिया है भाइयों, पर अब समय आ गया है कि हम ऊपर उठें, हम ऊपर उठ रहे हैं और अब हम पिछले सब अन्यायों का बदला लेंगे और एक दिन आयेगा कि ये ब्राह्मण-ठाकुर-कायस्थ-बनिये—ये सब अपनी बेटियों को खुशी से हमारे लड़कों के हाथों में सौंपेंगे और हमें दामाद बनाकर खुश होंगे।"

सभा में 'हो हल्ला' मचने लगा। कुछ लोग उठकर चल दिये। कुछ लोग तालियाँ पीट रहे थे, कुछ हँस रहे थे। पर अछूत नेता न रुका। वह कहीं भी नहीं रुका। चुनाव में भी नहीं रुका—वही हुआ एम० एल ए० और शत्रुघ्न टापते रह गये।

तब उन्हे कांग्रेस से—कांग्रेस के सिद्धान्तों से—कुछ घृणा-सी हो गयी और जब उन्होंने देखा कि इस कांग्रेसी-राज्य में चारों ओर जातिवाद का बोलबाला है और स्वार्थों की छीना-झपटी हो रही है, हर जगह अन्धेरगर्दी मच रही है, तो वे कांग्रेस सरकार का खुल्लम-खुल्ला विरोध करने लगे और सोशलिस्ट पार्टी में शरीक हो गये और जनता की भलाई में लग गये। लोग कहते हैं, जनता की भलाई के नाम पर ठाकुरसाहब हजारों रुपये खा गये। लोग तो गाँधी और नेहरू को भी गालियाँ देते हैं। लोग बकते हैं, बकने दो। कुत्ते भूँकके रहते हैं—हाथी अपनी राह चला जाता है जमींदारी का तो उन्मूलन हो गया। सात सौ बीघा सीर थी और ढाई सौ बीघे बाग थे, अब इन्हीं पर गुजर-बसर करते थे। दो ट्रैक्टर ले लिये थे और अपना बिजली का कुआँ बनवा लिया था। ईख होती थी खेतों में और गेहूँ होता था। इसी ईख के कारण सूगर मिल के शेयर्श लेने पड़े थे और डाइरेक्टर भी बनना पड़ा था। एक 'ग्लास-फैक्टरी' भी खोल दी थी,

गरीबों को रोजी देने के लिए और कई कुटीर उद्योग चला रहे थे और इस प्रकार जनता की भलाई के लिए कांग्रेस छोड़ दी थी और सोशलिस्ट पार्टी में आ गये थे। पार्टी का कार्य-क्रम तेजी से चल था और उसी प्रसंग में ये कुछ लोग अभी आये थे। बाहर निकलकर शत्रुघ्न सिंह ने खड़े-खड़े ही पूछा—

"क्यों, क्या निश्चय रहा फिर ?"

सहयोगियों ने कहा, सब ठीक है। कल पाँच सौ किसान तहसील पर धरना देंगे। आपको ही नेतृत्व करना है।"

"मैं तैयार हूँ।" शत्रुघ्न सिंह ने छाती ठोंककर कहा, "किसानों के लिए मैं हर तरह का जुल्म सहने को तैयार हूँ। मेरा छोटा बच्चा मौत के मुँह में पड़ा है, लेकिन कोई परवाह नहीं। सब छोड़कर सबेरे हाजिर होऊँगा। तुम लोग निश्चिंत रहो।"....

चण्डी-पाठ करके पुरोहित उठे तो दिन डूब चुका था। चलने लगे तो घर की धीमरी आकर नैनीताल के फल दे गयी थोड़े से। फिर बाहर आकर खड़े रहे थोड़ी देर कि वृद्ध जमींदार हरपाल सिंह से भेंट हो जाती तो कुछ अर्ज करते। बैठक में सन्नाटा छाया था। शायद सब लोग भीतर खा पी रहे हों। चल दिये सिर झुकाये। कस्बे की पछाहीं पट्टी पर एक बूढ़ा महाजन रहता था, जो गरीबों के जेवर और बरतन गिरवी रखता था और खरीदता था। पुरोहित उसी के आगे जा खड़े हुए और बगल से एक छोटी सी पोटली निकालकर बोले, "कुछ रुपयों की दरकार थी, सेठ।" महाजन ने चाँदी के खड़ुए, चाँदी के छल्ले और बिछुये दीये की रोशनी में लोट-पोटकर देखे और सिर हिलाकर बोला, "गिलट है निरी, सबेरे पधारो महाराज, सूरज की रोशनी में देखकर कुछ दाम लगा सकूँगा।"

तन छीन, मन मलीन होकर चले आ रहे थे अपने घर की ओर और सोच रहे थे कि कहाँ से साढ़े सत्रह रुपये पाऊँ ? कौन जतन करूँ ? कैसे इन्जेक्शन मँगवाऊँ ? जो मेरे दीपक को कुछ हो गया तो फिर कैसे जीवित रह पाऊँगा, नारायण ! तुम्हारा ही एक अवलम्ब है, दीनानाथ ! पुरोहित की आँखों में पानी छलछला आया, रोते गये और चलते गये ! चौखट आ गयी अपनी तो अँगौछे से आँख पोंछकर भीतर घुसे।

आँगम में, लालटेन की मद्धिम रोशनी फैली थी और रसोईघर से हलका-हलका धूआँ उठ रहा था। सामने ही, छप्पर में बालक की खाट थी। वहीं से एक महीन पुकार आयी, "बाबा!"

पुरोहित लपककर बालक के पास जा पहुँचे और उसके माथे पर हाथ रखकर ममता से बोले, "बेटा, अब कैसा जी है तेरा, तबियत ठीक है बेटा?"

दीपक ने दादा का हाथ पकड़कर मचलकर कहा, "मुझे भूख लगी है बाबा, खाने को दो। माँ मुझे रोटी नहीं देती।"

जाने कब चुपचाप पीछे आ खड़ी हुई थी। हौले से बोली स्नेहभरी वाणी में, "तब से खाने की रट लगाये हैं। बुखार तो एकदम हलका पड़ गया है!"

"हे नारायण, हे प्रभु, हे दीनानाथ!" गंगाराम से और कहा नहीं गया कुछ। भीतर आले में भगवान् की मूर्ति विराज रही थी। तब से दस बार उस मूर्ति के आगे माथा टेक गयी थी। ससुर को विह्वल देखकर अब फिर दौड़कर उन्हीं करुणामय के आगे अपना शीश रखकर रोकर कहा, "और कुछ नहीं चाहती स्वामी! यह मेरा दीपक बुझ न जाय। और चाहे जितनी विपदा दो, चाहे जितनी परीक्षा लो प्रभु, मैं हारूँगी नहीं।"

शान्तिस्वरूप, दीपक का पिता, बहुत छोटा था, तभी अचानक एक दिन की बीमारी में उसकी माँ चल बसी। पिता ने जाने कितने कष्टों से पाल-पोसकर उसे खड़ा किया। फिर वह पढ़ने गया परदेश। फिर वह सयाना हुआ, शास्त्री हुआ, बी० ए० हुआ। फिर वह तहसील के इण्टर कालेज में अध्यापक हुआ। कितनी शीघ्रता से, कितनी लगन से उसने सब किया और जब वह अपना पहला वेतन लेकर घर आया तो पिता के चरणों में वह छोटी-सी धनराशि रखकर बोला, "आज से आप की पुरोहिताई समाप्त है दादा, प्रार्थना कर रहा हूँ, आज से यह पोथी-पत्रा लेकर कहीं मत जाइएगा, चाहे लखपति ही बुलाये। वचन दो दादा!"

गंगाराम की आँखों में छर-छर करके आँसू बह चले। एक बार कहना चाहा, "तुझे पाकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ बेटा! मेरी सात पीढ़ियाँ तर गयीं।" पर कुछ बोला ही नहीं गया। बेटे के पीठ पर हाथ फिराते रहे और रोते रहे।....
इसके बाद, शत्रुघ्न की पत्नी ने अपने मायके की सलोनी ब्राह्मणकन्या जसोदा से

शान्तिस्वरूप का ब्याह करा दिया। वह वहुत ही भली नारी थी और यशोदा को 'छोटी वहिन' करके मानती थी। उसी नाते से जसोदा शत्रुघ्न को जीजा कहती थी। जसोदा की वह 'जीजी' मर गयी चौथी सन्तान के प्रसवकाल में। देश-सेवा में लगे शत्रुघ्न ने फिर और शादी न की।

तव एक घटना हुई। शत्रुघ्न के माता-पिता चारोधाम की यात्रा के लिए निकले और शान्तिस्वरूप के आग्रह पर गंगाराम पुरोहित भी उनके साथ हो लिये। पीछे शान्तिस्वरूप अचानक रोगी हुआ और तबियत ज्यादा खराब होने लगी तो जसोदा ने घवराकर 'जीजा' को बुलाया। शत्रुघ्न खुद शहर गया। डाक्टर को लाये। रात को खुद जाग-जागकर दवा दी। पौ फट रही थी तव शान्तिस्वरूप ने जशोदा के करूण चेहरे पर दृष्ठि जमाकर हौले से कहा, "सुनो जसोदा !" पति के मुरझाये मुख पर झुककर जसोदा कातर होकर पूछने लगी, "क्या कहते हो ?" पर शान्ति स्वरूप ने कुछ न कहा। वह सदा के लिए चुप हो गया। पुरोहित गंगाराम तीर्थ करके लौटे तव पुत्र की चिता की धूल तकउड़ चुकी थी। चिता की वह धूल जशोदा के वालों में भर गयी थी और कलेजे पर लिपट गयी थी और चेहरे पर छा गयी थी, जिस चेहरे की खुशियों को फाँसी लगा दी गयी थी और जिस चेहरे की मुशकराहटें कत्ल कर दी गयी थीं। पुरोहित गंगाराम लौटे तो जसोदा का यह हाल था कि वह रोती न थी और कुछ वोलती न थी, वह मानो गूँगी हो गयी थी।

दुनियाँ बदल गयी गंगाराम की और महीने बीतने लगे, फिर पूरा साल बीत गया और दूसरा साल आ गया। वह पोथी-पत्रा, जिन पर धूल की परतें जम गयी थीं गंगाराम ने फिर उठा लिया था। और फिर पुरोहिताई करने दर-दर भटकने लगे थे।

जव यों यह बेरहम और बेहया जिन्दगी वीत रही थी और जब सावन की एक रात को पुरोहित गंगाराम पड़ोस के किसी गाँव में व्याह कराने गये हुये थे और घर में कोई दूसरा न था, अचानक ठाकुर शत्रुघ्न सिंह इस घर के आँगन में आ खड़े हुए। जसोदा अपने बच्चे को लिये खाट पर लेटी थी और मन उसका जाने कहाँ बादलों के साथ उड़ता फ़िर रहा था। जीजा को सामने खड़ा देख वह हड़वड़ाकर उठ बैठी और कलेजा धड़कने लगा उसका। बीसियों वार जीजा

उसके घर आये थे, पर आज की बादलों-भरी इस रात का आना जैसे सबसे अलग था। शत्रुघ्न सिंह खुद खाट पर बैठ गये और यसोदा को सामने बिठाकर सब स्पष्ट करके कहा तो जसोदा रोने लगी अँधेरे में और रो-रोकर कहने लगी, "मुझ पर रहम करो जीजा, ऐसी बातें न कहो। मैं इसी तरह जिन्दगी गुजार दूँगी, अपने बच्चे का मुँह देखकर, अपने ससुर की छाया में।"

शत्रुघ्न ने शान्तस्वर में कहा, अच्छी तरह सोच लो जसोदा, सोचकर मुझसे कहना। यह बुड्ढा आखिर कब तक जिन्दा रहेगा? तुम्हारे माँ-बाप भी नहीं हैं और दुनिया तुम्हें सरलता से यह जवानी नहीं काटने देगी। इससे यह लाख गुना अच्छा है कि तुम मेरी होकर रहो। बाकायदा तुमसे शादी करूँगा। शहर वाले अपने मकान में तुम्हें रखूंगा। इस बच्चे को परवरिश करूँगा। तुम्हारे जो सन्तान होगी, मेरी सम्पत्ति में उसका हक होगा। जाति-पाँति को आज-कल पूछता ही कौन है! मैं तुम्हें वह सब दूँगा, जो तुम्हें कभी न मिला। जिन्दगी का वह सुख तुमने देखा ही कहाँ है? सोच लो जसोदा; अच्छी तरह सोचकर जवाब दो।"

तब जसोदा ने आगे बढ़कर जीजा के दोनों पैर पकड़ लिये कसकर और दीन-कातर वाणी में कहा आँखों आँसू बहाते, "तुम्हारे पैर छू रही हूँ जीजा, दया की भीख माँग रही हूँ। अब चले जाओ यहाँ से।"

शत्रुघ्न उठकर खड़े हो गये। एक साँस खींचकर कहा, "अच्छी बात है। चला जाता हूँ। लेकिन एक दिन आयेगा, तुम हार जाओगी जसोदा और तब खुद....।"

....शत्रुघ्न बहुत गम्भीर थे। पर आदमी अपने भीतर का सब किसी के आगे प्रकट करने में सुख मानता है। एक लंगोटिया यार था शहर में। उस पर बहुत विश्वास करते थे। उसे सब सुना दिया। उसीके साथ कभी अँधेरी रातों में बैठकर पीते थे और पीकर आदमी जो कुछ करता है, वह सभी करते थे। उस यार ने एक दिन बड़ी प्यारी बात कही शरूर में। वह यार बोला, "कहो भाई जहाँगीर, तुम्हारी नूरजहाँ का क्या हाल है? नहीं-नहीं किये जा रही है अभी? शेर अफगन को तो तुमने दोस्त, ऐसी सफाई से हटा दिया कि साला खुदा भी नहीं जान सका। वाह रे मेरे शत्रुघ्न!"

कमरे में और कोई न था। शत्रुघ्न ने सिर को झटका देकर कहा, चुप रह यार, दीवालों के भी कान होते हैं। नूरजहाँ मेरी होकर रहेगी—तू समझता क्या है? मैं उसे बचपन से प्यार करता आया हूँ—कुँआरी थी वह तब से, और मैं दुनिया की हर हसीन औरत को उसके आगे हेच मानता हूँ और एक दिन वह मेरी होगी। हाँ!"

....पूजा-पाठ और कीमती दवाइयों के बावजूद दूसरे दिन जमींदार के छोटे पौत्र की तबियत और ज्यादा खराब होने लगी तो बड़ा पौत्र राजेन्द्र फूफाजी की कार भगाता शहर पहुँचा और उधर से डाक्टर बनर्जी को ले आया घण्टे-भर में। डाक्टर के आने से पूर्व, वृद्ध जमींदार हरपाल सिंह ने पुरोहित गंगाराम से आकर कहा, "गंगाराम, सारी शक्ति लगाकर आराधना करो। आज तुम आसन से हिलो मत। अब अखंड पाठ चलेगा चौबीस घण्टे का। तुम जानते हो, देवता के आगे मैं दवाओं पर विश्वास नहीं करता। मुझे भगवती पर अटल श्रद्धा है। मेरी अटूट श्रद्धा टूटने मत देना गंगाराम। अब उठना मत आसन से। और सब कुछ बिसार दो आज। पुकारो भगवती को, मेरे पोते की रक्षा करें। भरपूर दक्षिणा दूँगा। अपने मन का जोर लगाओ, पुरोहित!"

"ऐसा ही होगा सरकार!" गंगाराम ने सीना उभार कर कहा, "सब कुछ बिसार कर भगवती को पुकारूँगा।"

डाक्टर बनर्जी आये तो बालक होश में न था। ऐसा सीरियस केस देखकर एक बार चौंके, एक बार निराश हुए, फिर सारे जतन से उसकी चिकित्सा में लग गये।

शत्रुघ्न सिंह ने पार्टी के आदमियों को वचन दिया था। वचन की रक्षा के लिए, दिन निकलते ही वे किसानों के उद्धार-हेतु चले गये थे।

लगातार दो- तीन इंजेक्शन लगाकर डाक्टर बनर्जी ने बालक की नब्ज देखी और फिर माथे का पसीना पोंछकर राजेन्द्र के फूफा से कहा, खतरे को पार कर गया पेशेंट।" तो सब ने सन्तोष की साँस ली। डाक्टर बनर्जी ने अब तक ध्यान न दिया था। गुनगुनाहट सुनकर अब इधर देखा तो फौरन ही फूफा से पूछा अंग्रेजी में "यह क्या हो रहा है?" फूफा ने अंग्रेजी में ही उत्तर दिया, "बेवकूफी।"

राजेन्द्र पास ही खड़ा था। उसने बी० ए० में संस्कृत ली थी और संस्कृत में ही सबसे अधिक नम्बर पाये थे। उसने भी अंग्रेजी में कहा, "न तो यह आदमी शुद्ध उच्चारण ही कर रहा है और न किसी श्लोक का अर्थ ही जानता है। तोते की तरह रट रहा है।"

डाक्टर बनर्जी ने एक बार फिर नब्ज पकड़ी और आश्वस्त होकर बोले, "विज्ञान के इस युग में, अभी तक यह जादू-टोना हिन्दुस्तान में चल रहा है। जाने कब आँख खुलेगी लोगों की !"

फूफाजी ने अपनी राय दी, "सरकार को कानून बनाकर इन चीजों को रोकना चाहिए।"

डाक्टर बनर्जी ने कहा, "अभी कुछ समय लगेगा देश को सुधरने में। मेरा 'टी-टाइम' हो गया भाई !"

"सॉरी !" कहता हुआ राजेन्द्र तेजी से बाहर को चला तो सहसा दरवाजे पर खड़ी एक मैली-कुचैली बुढ़िया से टकरा गया। यह जशोदा के पड़ोस से रहने वाली अहीरिन थी। शाही कमरे में डरते-डरते उझक रही थी। फूफा ने देखकर रूखे स्वर में पूछा, "क्या है ?" तो डरती-डरती बोली, "पुरोहितजी की बहू ने बुलाया है बच्चा का जी ठीक नहीं है।" फूफा ने घृणा से मुँह फेर लिया। पुरोहित ने बुढ़िया की ओर देखा और हाथ हिलाकर बतला दिया कि वे उठ नहीं सकते, कुछ सुन नहीं सकते सब कुछ विसार दिया है और भगवती को पुकार रहे हैं कि जमींदार के पौत्र की रक्षा करें।

दीपक बार-बार खाने के लिये जिद करने लगा। घर में दूध नहीं दूध के लिए पैसे भी नहीं। क्या दे खाने को ? जसोदा ने हारकर नैनीताल वाले फल दे दिये उसे। सोचा कि बुखार में फल भला क्या नुकसान करेंगे। पर घण्टे भर बाद ही जब दीपक की साँस उखड़ने लगी और वह कराहने लगा कष्ट से और छाती में दर्द भी बतलाने लगा तो जसोदा ने घबराकर वैद्य को बुलाया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की डिस्पेंसरी का वह वैद्य बेचारा फौरन उठकर चला आया और उसने आला लगाकर देखा तो आँखें चढ़ाकर बोला, इसे तो निमोनिया हो गया भाभी, क्या कुछ खाने को दे दिया था ?"

जसोदा के होश उड़ गये। काँपकर बोली, "फल दिये थे।"

"गजब कर दिया भाभी, तुमने बालक को खुद मौत के मुँह में ढकेल दिया"

जसोदा ने घबराकर अहीरिन दौड़ायी, पर ससुर न आये। वैद्य बहुत सहृदय था। वह स्वयं दवा तैयार करके दे गया और दो बार फिर चक्कर लगा गया। पर दवा का कुछ असर न हुआ और दीपक की हालत खराब होने लगी तो उसने फिर अहीरिन को दौड़ाया ससुर के पास।....

यहाँ डाक्टर बनर्जी ने केस सम्हाल लिया और दीये जलती बेला जमींदार के पौत्र ने आँखें खोल दीं और पँलग पर उठकर बैठा और दूध पिया थोड़ा-सा तो सबके चेहरे खुशी से चमक उठे। डाक्टर बनर्जी ने शान्त भाव से कहा, "आज की रात यह गहरी नींद सोयेगा और मैं समझता हूँ, सुबह तक बुखार इसका कत्तई उतर जायेगा और कुछ खा भी सकेगा। अब मेरे जाने का इन्तजाम कीजिए।"

पर फूफाजी ने उन्हें जाने न दिया। रात की भी फीस देंगे, रहें अब डाक्टर साहब, सुबह का पथ्य देकर जायें।

ये लोग कमरे से उठ गये तो वृद्ध हरपाल सिंह ने पुरोहित के पास आकर कहा, "सब भगवती की कृपा है, मैं डाक्टरी नहीं मानता। आज सारी रात अखंड पाठ करो गंगाराम! भरपूर दक्षिणा दूँगा। हिलना मत आसन से। माँ की दया का प्रभाव प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।"

रोगी बालक को जाने कब नींद आ गयी थी। आज वह बहुत शान्त-सा होकर गहरी नींद सोया था घर के और सब लोग भी सो गये। डाक्टर भी सो गये थे जाकर। उस कमरे में केवल एक दासी बैठी ऊँघती रही और पुरोहित गंगाराम स्थिर मति होकर अखंड चण्डी-पाठ करते रहे कोने में आसन पर बैठे।

डाक्टर ने निषेध कर दिया था, "अब इस कमरे में कोई आने न पाये। बुढ़िया अहीरिन बाहर फाटक से लौट गयी ओर लौटकर जसोदा से कह गयी, "पुरोहितजीके पास किसी ने जाने ही नही दिया बहू!"

रात को साढ़े दस बजे वैद्य फिर आया तो दीपक से साँस नहीं ली जा रही

थी। ऐसी नाजुक हालत देखकर किंकर्तव्यविमुढ़ वैद्य ने जसोदा से कहा, "भाभी, शहर के सबसे बड़े डाक्टर आज यहीं हैं। वे तुम्हारे दीपक की प्राण-रक्षा कर सकते हैं। ठाकुरसाहब से— अपने जीजाजी से जाकर कहो भाभी और डाक्टर बनर्जी को बुला लो।"

एक खुराक दवा और चटाकर वैद्य चला गया।

जसोदा भागी-भागी भगवान् की मूर्ति के आगे आयी और वहीं आले में सिर पटककर, करुण-क्रन्दन करके भगवान् से कहने लगी, "इतनी कठोर परीक्षा मत लो नारायण! मेरे दीपक को सामने खड़ा करके मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हो देवता? अब मैं हार जाऊँगी, अब बल नहीं रहा—अब और नहीं सह पाऊँगी करुणानिधान! और बार-बार माथा मारने लगी भगवान् के चरणों में।

सहसा दीपक ने चिल्लाकर कहा, "माँ, मेरी किताबें लाओ, माँ, मैं पढ़ने जाऊँगा। मेरा इम्तहान है माँ!"

जसोदा ने एक बार पास आकर बालक का मुख देखा फिर बाहर को भागी। उस बियाबान रात में जसोदा सारी रात पागलों की तरह भागती गयी—भागती गयी और जीने से उपर चढ़कर शत्रुघ्न के निजी कमरे के आगे आ खड़ी हुई और बन्द किवाड़ों पर पूरी ताकत से मुट्ठियाँ मारी उसने।

कमरा खुल गया। जसोदा हाफती हुई खड़ी थी और फटी-फटी आँखों से सामने खड़े शत्रुघ्न को देख रही थी। सारे दिन की थकान और उदासी दूर करने के लिए अभी-अभी उन्होंने पीकर बोतल और गिलास उठाये थे और अब आँखों के डोरे अब लाल थे और दुनियाँ रंगीन दीख रही थी। दृढ़ स्वर में बोले, "आओ, भीतर आ जाओ।" और कठपुतली-सी जसोदा भीतर आकर उनके पलंग पर बैठ गयी। तब शत्रुघ्न ने उसके पास ही बैठकर उसके चेहरे पर अपलक दृष्टि जमाकर कहा, "मैं जानता था, तुम आओगी। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम क्यों आयी हो—किस लिए आयी हो। आखिर तुम हार गयी न! अब आज अपनी मर्जी से आधी रात को मेरे पास आयी हो और मेरे कमरे में मेरे पलंग पर, मेरी बगल में बैठी हो यहाँ। अब तैयार हो न, अपना सब देने के लिए और मेरा सब लेने के लिए? यह तुम्हारी बेचैनी, यह तुम्हारी घबरायी-घबरायी

नजर, य लम्बी-लम्वी साँसें, यह अकुलाहट ! वहुत सुन्दर लग रही हो। लजाओ मत जसोदा, एक वार तुम्हारे मुँह से इतना सुनना चाहता हूँ कि, हार गयी हूँ और अब तुम्हारी हूँ।' कहो जसोदा कहो, कहो !"

जसोदा ने एक बार शत्रुघ्न की आँखों में आँखें डालकर देखा और फिर हृदय की, आत्मा की सारी शक्ति लगाकर चिल्लाकर कहा, "नहीं।"

फिर वह तीर की तरह भागी वहाँ से।....

....नित्य की तरह दिन निकला। जमींदार के पौत्र का बुखार विलकुल उतर गया था। डाक्टर बनर्जी उसे दो बिस्कुट खिलाकर शहर लौट गये। हरपाल सिंह स्नान करके सीधे इधर ही चले आये और पौत्र को एक दस रुपये का नोट देकर बोले, "पंडितजी को दो बेटा, आओ गंगाराम।"

पुरोहित ने अपने दोनों हाथ फैला दिये। लड़के ने नोट छोड़ दिया अंजलि में। पुरोहित ने आशीर्वाद दिया तब, "जुग-जुग जियो राजा, जुग-जुग जियो!"

वीच राह में पुरोहित भाग नहीं सकते थे। जितनी शीघ्रता से हो सकता था, पैर बढ़ाते आये और भगवती को सुमिरते आये अपने दरवाजे तक।

....दरवाजे पर जसोदा खड़ी मिली। बिलकुल शान्त, स्थिर, अचल होकर खड़ी थी किवाड़ से सटी और चेहरा उसका जर्द था। गंगाराम ने एक डग भरा, सामने आये, अकुलाकर पूछा, "दीपक कैसा है बेटी ?"

तब बेटी जसोदा ने सफेद ओठों से कहा, विलकुल शान्तस्वर में "दीपक मर गया, जाइए कफन ले आइए।"

अर्थहीन

"हमारा हक़ है जी, आप इसे अन्याय कैसे कह सकते हैं ? अपना हक़ हासिल करना कोई अपराध है क्या ?;'—कहकर महिला लिपस्टिक से रँगे होंठों से मुसकरायी ।

बैरिस्टर सिनहा ने कहा—"आप ठीक कहती हैं, लेकिन मैंने आपसे अर्ज किया न, आपका भाई आजकल बेहद मुसीबतों में है । उसे सर्विस से हटा दिया गया है, केस चल रहा है—फिर अपनी जगह पा सकेगा, उम्मीद कम ही है। फ़िलहाल उसे एक पैसे की इन्कम नहीं और बेचारे के सात-सात बच्चे हैं। बेइज्जती और कंगाली में गले तक डूबा है और इस हालत में आप उसके ऊपर दावा करना चाहती हैं, नये एक्ट के मुताबिक़, पैतृक सम्पत्ति के लिये । सम्पत्ति और क्या है, मकान ही है न, तो अब आप बाप-दादों के उस मकान का बँटवारा कराइयेगा भाई से ? मुझे तो बड़ा अटपटा-सा लग रहा है । भगवान् ने आपको सब कुछ दिया है । शहर के सबसे बड़े ठेकेदार की आप पत्नी हैं । क्या कीजियेगा भाई से आधा मकान लेकर ? आख़िर वह आपका सगा भाई है, यह तो ख़याल कीजिए !"

आधा पेट खोले बैठी महिला ने कहा—"बैरिस्टर साहब, आज के ज़माने में न कोई किसी का भाई है, न कोई किसी की बहिन । ये सब नाते-रिश्ते तो सिर्फ़ मतलब के होते हैं । और नौकरी से वह अलग कर दिया गया है तो अपनी ग़लती से । घूसखोरी में पकड़ा गया और निकाल दिया, गया ठीक ही हुआ । ऐसे आदमी की बेइज्जती न होगी तो क्या कीर्ति होगी ? लेकिन कंगाल वह किधर से है ? इतना जो कमाया है ठेकेदारों से चूस-चूसकर, सो कहाँ गया सब ? चीफ़ इन्जीनियर का हेड क्लर्क था वह । मकान तो साहेब, मैं उससे ज़रूर बँटवा लूँगी । अपना हिस्सा लेकर जो खुशी होगी करूँगी—बेच दूँ, चाहे किराये पर उठाऊँ । कोई

दायर करना भर है। जीत तो मैं जाऊँगी ही बाप की ज़मीन-जायदाद में बेटी का हक़ बेटों के बराबर सरकार ने मान लिया है, तो उस पर अमल भी होना चाहिये !"

बैरिस्टर ने फिर कुछ न कहा और हँस दिये धीरे से तो मिसेज़ सिनहा को बुरी लगी पति की यह हरकत। उन्होंने सहेली का हाथ पकड़कर तुनुककर कहा--"चलो डियर, हम लोग शो देख आयें। इनसे मैं निवट लूंगी लौटकर। बकने दो इन्हें। केश तुम ज़रूर दायर करो जी। जीत होगी तुम्हारी और इससे हमारे महिला-समाज को बहुत लाभ होगा। सब बहिनों की हिम्मत बँधेगी भाइयों से बाप का हिस्सा हासिल करने की।"....

....दोनों खड़ी हो गयीं और चलने लगीं तो मिसेज़ सिनहा ने पीछे मुड़कर पति से कहा—"अच्छा जी, खाना खा लीजियेगा और देखिये, कहीं निकल मत जाइयेगा, आठ के बाद। हाँ !"....

तब बग़ल की कुरसी पर शान्त बैठे पडोसी प्रोफ़ेसर ने धीरे से एक साँस ली और फिर हौले से कहा—"क्या ये रास्ते ग़लत हैं ? क्या ये रास्ते सही हैं ?"

बैरिस्टर ने मुंह से सिगार हटाकर कहा—"मैं भी तब से यहीं सोच रहा हूँ। क्या हम भटक गये हैं कि हम उन्नति कर रहे हैं ?"

पड़ोसी प्रोफ़ेसर ने कहा—"शायद हम बूढ़े हो रहे हैं, शायद ज़माने के साथ नहीं दौड़ पा रहे हैं, इसलिये हर नयी चीज़ को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। हो सकता है, हमारा नज़रिया ही ग़लत हो। पर मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ—ये भाई-बहिन के रिश्ते न रहें तो क्या हानि होगी ? देखियें, भावुकता में मत जाइयेगा, सही-सही उत्तर दीजिये—भाई-बहिन न रहें कहीं, मान लीजिये, केवल नारी और केवल पुरुष—क्या हानि है ? बोल्लिये !"

बैरिस्टर ने कहा—"हानि कुछ नहीं है शायद। पर इस तरह आदमी और ज्यादा पतित हो जायेगा, ऐसा लगता है मुझे !"

"देखिये तो, स्नेह-ममता-मोह-प्यार ये सब समाप्त हो जाये तो आदमी और दृढ़ होकर उन्नति करेगा न ? ये सब तो आदमी की कमज़ोरियाँ होती हैं।"

बैरिस्टर ने कुढ़कर कहा—"स्नेह-प्यार को आप कमज़ोरी कहते हैं। मैं

कहता हूँ, आदमी का एकमात्र सम्बल है—यही स्नेह और प्यार। यही इतनी इन्सानियत की निशानी है उसकी। नहीं तो आदमी जानवर से भी बदतर हो जायेगा। उन्नति क्या करेगा खाक !"

पड़ोसा प्रोफ़ेसर ने कहा—"हम लोग शायद बूढ़े हो रहे हैं। पुरानी चीज़ों से चिपटे रहना चाहते हैं पर हम ज़माने को कैसे रोक सकते हैं, ज़माना आगे बढ़ रहा है। वह महिला, जो अभी आपसे बात कर रही थी, कितनी सुसंस्कृत थी, अपना अधिकार पाने के लिये दृढ़-संकल्प। उस कल्चर्ड नारी को देखकर मुझे एक कहानी याद आ गयी है—एक घिसी-पिटी पुरानी कहानी। कहानी में शिल्प क़तई नहीं है और थीम भी पुरानी है। सुनियेगा ? टाइम है न ?

"टाइम काफ़ी है।"—बैरिस्टर ने हँसकर कहा—"आप इतमीनान से "अपनी वह घिसी-पीटी कहानी सुनाइये।

× × ×

""यह कहानी एक साधारण से कस्बे से शुरू होती है। कस्बे में एक लड़की की शादी हो रही थी। बारात आ गयी थी और लड़की के घर वाले भाग-दौड़ कर रहे थे। अभी-अभी 'द्वार-पूजा' हो चूकी थी और गोधूलि के समय भाँवरे पड़ने वाली थीं।

पार्वती की एक बचपन की सहेली थी, विद्या। वह आज संबेरे ही अपनी ससुराल से लौटकर आयी थी और तब से औरतों की भीड़-भाड़ में खड़ी 'द्वार-पूजा' का तमाशा देख रही थी।

वर जनवासे की ओर लौट गया तो विद्या अपनी सहेली को खोजतो यहाँ आ पहुँची, छत पर एकान्त में मौन बैठी पार्वती के पास।

"कहो जी, क्या हाल है ? अपने साजन को देखा न ? कैसा लगा ?"

पार्वती तनिक-सी मुसकरा के रह गयी। विद्या ने प्रसन्न भाव से कहा—"बहुत सुन्दर है। है न ? अरी, बोल न ! गूँगी क्यों हो गयी ?"

पार्वती ने लजाकर कहा—"क्या बोलूं !"

"पसन्द आया न अपना बालम ?"

"मैंने नहीं देखा।"

"हाय मैया ! गले में हार पहिना आयी। तेरे सामने खड़ा रहा इत्ती देर और कहती है कि देखा ही नहीं ! उस घड़ी नयन मुंद गये थे क्या ?"

"हाँ।"—पार्वती ने ज़रा-सा मुसकराके लजाकर कहा—"देखा ही नहीं गया मुझसे नज़रें उठाकर।" फिर बहुत हौले-से बोली—"पहिले देखा था।"

"कब ? क्या कुछ प्यार-मुहब्बत चल रही थी उससे तेरी। पहिले से ही प्रीति जुड़ी थी क्या ?"

पार्वती फिर मुसकरा के रह गयी। विद्या ने मचलकर कहा—"सुना न ? तुझे मेरी कसम पारो, बतला मुझे, कैसे, क्या हुआ था ? 'हाय राम पहिले से ही धनुष-बाण चला चुकी हो। तब तो घायल होकर ही आया होगा बेचारा। अरी तीरन्दाज़, सुना तो ज़रा कहाँ-कब मिला था तुझे यह भोला पंछी ?"

पार्वती ने लजाते-लजाते कहा—"नहीं विद्या, ऐसा कुछ नहीं हुआ था। सिर्फ देखा-देखी, और फिर एक बार····

विद्या टकटकी-लगाये सहेली के रंग बदलते मुखड़े को निहार रहीं थी। पार्वती के चेहरे पर जाने कहाँ से लाली आ गयी। चेहरे पर वह लाली लिये, पलकें झुकाये, सखी को सुनाने लगी—"रामदेव भैया के कालेज का साथी है। पहिले-पहल उन्हीं के साथ आये थे, हमारा यह कस्बा देखने। महरिन उस दिन आयीं न थी। घर में पानी की बूंद नहीं। भैया कहीं बाहर गये थे। मैंने कहा—"भाभी, लाओ, तक तक मैं ही भर लाऊँ कुएँ से एक बाल्टी।" भाभी हाथ हिलातीं बोलीं—"ना बाबा, तुम मत जाओ कुएँ पर। भैया तुम्हारे सुन पायेंगे तो मेरी जान ही ले लेंगे।" पर मैंने उनकी एक न सुनी और रस्सी-बाल्टी लिये कुएँ तक आयी तो देखा—ये खड़े हैं वहाँ। जाने कैसे आँखें मिल गयीं। अब ज कुएँ में बाल्टी डालती हूँ तो रस्सी मेरे हाथों से सरकती चली गयी। जाने क्या हो गया मुझे। इत्ती शरम लगी कि तुझे क्या बतलाऊँ। पाँच हाथ के फ़ासले पर जाने कौन खड़ा है और शायद मेरी ओर ताक रहा है। बस, कुएँ में बाल्टी डाले खड़ी थी। पानी भरी बाल्टी खींच नहीं पा रही थी कि इतने में रामदेव भैया

आ गया और उसने झट से मेरे हाथों से रस्सी पकड़ ली और हँसकर बोला--"हट तो ज़रा, इसे पानी पिला दूँ तेरी बाल्टी से। परदेशी है बेचारा, प्यासा है, लेकिन जात का डोम है। बोल पिला दूँ पानी इसे तेरी बाल्टी से?" मैंने किसी तरह सिर झुकाये कहा--"पिला दे।" तो रामदेव भैया उनसे कहने लगा--"देख पाल, मेरी बहिन कित्ती फ़ारवर्ड है। मेरे कस्बे की मेरी सब बहिनें ऐसी ही दरिया-दिल हैं। तू डोम है तो क्या हुआ, कस्बे का मेहमान है न, ले भाई, पानी पी ले, प्यास बुझा अपनी।"

"जानती हो, इन्होंने क्या कहा तब?"

"क्या क़हा?"--विद्या ने उत्सुकता से पूछा।

हँसकर कहने लगे--"ऐसी ख़ातिर होगी यहाँ तो सारे परदेशी यहीं आकर बस जायेंगे।" रामदेव भैया ने इन्हें जवाब न देकर मुझसे कहा--'तू घर जा पारो, बाल्टी मैं लिये आता हूँ।" बस पहिली बार यही इतना हुआ। फिर दूसरी बार भेंट हुई अचानक कातिकी के मेले में, गंगा किनारे। तेरस थी कि जाने चौदस थी, मैंने अकेली-अकेली गंगा में नहाकर घाट से ऊपर आयी तो कि वहीं सामने एक बड़ासलोना-सा तीन-चार साल का बच्चा खड़ा रो रहा है। हाय! जाने किसका बच्चा है, शायद भीड़ में घर वालों से छूट गया है। मैं बच्चे के पास बैठकर पता-ठिकाना पूछती रही कुछ नहीं बतला पाया बेचारा। बस रोये जा रहा था। मैंने उसे गोद में उठा लिया और आगे बढ़ चली। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ, कहाँ इसे पहुंचाऊँ कि जाने किधर से वे भागे-भागे आये और बच्चे को मेरी गोद में देख, हँसकर बोले--"आपको कहाँ मिल गया यह मुन्ना? उफ़, तब से कितना परेशान हो रहे थे हम लोग। पुलिस में अलग रिपोर्ट करायी और दसियों आदमी छूटे हैं मेले में इसे खोजने। इसकी माँ रो-रोकर जान दिये जा रही है। भतीजा है मेरा यह। लेकिन आपको मिला कहाँ?"

मैंने साहस बटोरकर कहा--"वहाँ घाट किनारे खड़ा रो रहा था"

"लाइये, मैं ले लूँ।'. पर वह बच्चा मेरे कन्धे से ऐसा चिपक गया था कि गया ही नहीं उनकी बाँहों में। हँसकर बोले--क्या हो गया इसे? इतनी देर में ही आपको इस कदर चाहने लगा! अच्छा चलिये इसकी माँ के पास तक ले

चलिये अब। लाइये, ये कपड़े मुझे दे दीजिये। और तौलिये में लिपटे गीले कपड़े मेरे हाथ से ले लिये दो-चार क़दम मुश्किल से हम लोग आगे बढ़े होंगे कि सामने से एक पुलिसमैन लपकता आया और पास आते ही बोल उठा—"कहिये मिल गया आपका बच्चा? वाह साहब, आप लोग पढ़े-लिखे होकर भी ऐसी ग़लती करते हैं। कैसी लापरवाह हो तुम बहिन, एहतियात से अपने बच्चे को रखना चाहिये न!" लाज से भर-भर गयी मैं तो। सिपाही आगे बढ़ गया तो वे हँसकर बोले—"कैसी ग़लतफ़हमी कर गया यह। बुरा मत मानियेगा। आइये, यही सामने वाला डेरा है हमारा।" वहाँ पहुँचकर मेरी अजीब हालत हो गयी। बच्चे की माँ और बच्चे की ताई-चाची-मौसी-बुआ सब जुट आयीं मेरे चारों ओर। 'कहाँ मिला मुन्ना? कौन लाया? इसे मिला? यह लाई?' बार-बार सुनती रही। फिर इनकी माँ आयीं और मेरी पीठ पर हाथ फिराती बोलीं—"युग-युग जियो बेटी, हाय, हमें उम्मीद थोड़े ही थी कि मुन्ना हमें फिर देखने को मिलेगा। तुम्हारा नाम क्या है बेटी? क्या बतलाया? पार्वती! आहा, तू तो साच्छात् पार्वती मैया है बेटी, वही वेश-वही रूप। निहाल हो गयी मैं तो तुझे देखकर। हे नारायण, तुम्हारी करुणा अपार हैं। हे कृष्ण कन्हैया।"

"लो बहिन, पानी पी लो।"—बच्चे की युवती माँ ढेर सारा मीठा मेरे आगे रखकर बोली स्नेह से, "तुम्हारे उपकार का बदला हम कभी नहीं चुका पायेंगे। कहाँ ठहरी हो, कहाँ से आयी हो? तुम्हारे डेरे पर आएँगे हम सब!"

बातों-बातों में घण्टा भर हो गया तो में घबरायी कि अब मुझे भी ढूँढ़ने निकलेंगे मेरे डेरे वाले। "माँ, अब मैं चलूँ?—माँ इनकी कहने लगीं—"मेरा तो तुझे देखने से ही मन नहीं भरता। अच्छा जा, फिर मेरे पास आइयो बेटी, फ़ुरसत से फिर आइयो। अरे पाल, जा, इसे पहुँचा आ!"

आगे-आगे वो और पीछे-पीछे सिर डाले चलती मैं। जाने कैसा लगने लगा। काफ़ी दूर निकल आये तो बिना मेरी ओर देखे चलते-चलते ही कहने लगे धीरे से—'संयोग की बात देखिये कि आज सवेरे ही मेरे मन में जाने क्यों यह खयाल आया था कि कहीं आप से भेंट न हो जाय इस मेले में। और वही हो गया। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जो कुछ हम कल्पना से देखते हैं वही फिर प्रत्यक्ष

देखते हैं।" मैं कुछ भी न बोली। आगे बढ़ते हुये कहने लगे—'लेकिन यह कोई ज़रूरी नहीं है कि आदमी जो कुछ सोचे वह सच हो ही जाए। मुझे तो कल्पनाओं से डर-सा लगता है। कल्पना आदमी करता रहता है और पूरी वे होती नहीं हैं तो अपार कष्ट होता है फिर। मसलन, मैं अगर यह सोचने लगूँ कि आज का यह संग-साथ मेरा आपका जीवन भर का संग-साथ बन जाए, तो यह मेरी भूल ही होगी।" विन्ना, मैं नहीं जानती, उस दिन उन्होंने यह बात किस-लिये कही थी, लेकिन मैं तुमसे सच कहती हूँ, उनका यह जीवन भरका संग-साथ तब से मेरे मन में गूँजता ही रहा—गूँजता ही रहा। कोशिश करके भी मैं इस बात को कभी भुला नहीं पायी।"

सखी ने मोह में डूबकर कहा—"हो तो रहा है वही जीवन भर का संग-साथ। तू बड़ी भागों वाली है पारो, हज़ारों में, लाखों में एक है तेरा वह। अच्छा फिर.....फिर और क्या हुआ ?"

'फिर मैं शहर गयी परीक्षा देने पिछली साल। बुआजी के पास ठहरी थी। सवेरे मुझे फूफाजी सेंटर के दरवाजे तक पहुंचाकर अपने काम पर चले जाते। उधर से मुझे रामदेव भैया ले आते। भैया का बोर्डिंग वहीं पास था कहीं। लेकिन गणित वाले दिन पर्चा करके बाहर आयी तो रामदेव भैया कहीं न दीखे आसपास। परेशान सी खड़ी थी कि अचानक ही 'पर्चा कैसा हुआ ?' सुनकर पीछे सिर घुमाया तो ये खड़े थे। मेरे मुँह से आवाज न निकली। कहने लगे—'रामदेव के पैर में मोच आ गयी है रात। चलिये, मैं आपको पहुंचा दूँ। कैसा हुआ पर्चा ? देखूं ज़रा।' और ये वहीं बरामदे में रुककर पर्चा पढ़ने लगे ध्यान से, तो मेरे वाले कमरे की दो लड़कियाँ मेरी बग़ल में फुसफुसाकर बोलीं—'रोज़ तो इसका कोई भाई आता था ले जाने के लिये आज यह आया है—शायद स्वामी है इसका।' स्वामी! सच कहती हूँ, इतनी लाज लगी सुनकर कि यों लगा कि हाय, कहीं भागकर छिप जाऊँ। इन्होंने शायद कुछ नहीं सुना। मुझे पर्चा पकड़ाकर बोले—"चलिये।" चल दी चुपचाप सिर डाले इनके पीछे-पीछे, परन्तु लड़कियों की वह बात बराबर जैसे कानों के आसपास मँडराती रही—'शायद स्वामी है इसका।'

सड़क के किनारे-किनारे कुछ दूर हम निकल आये तो चलते-चलते हौले से बोले—"पर्चा कठिन है यह। आपने कितने सवाल हल किये?"

"सब कर दिये हैं। सब सही गये हैं बड़ा डर था इस पर्चे का!"

"डर तो हर परीक्षा से लगता है आदमी को।"—जरा सा मुसकरा बोले—"लेकिन परीक्षा से छुटकारा कहाँ है? यह हमारी जिन्दगी भी तो एक परीक्षा ही है कोई इसमें पास होता है कोई फ़ेल।"

बुआ के घर तक मुझे पहुँचाकर वे लौट गये। परीक्षा देकर मैं भी यहाँ चली आयी। साल भर होने को आया, पर विद्या, उनकी कही वह बात मैं एक दिन दिन को भी भूल नहीं पायी हूँ रोज जैसे एक गुंजन सा सुनती रही हूँ—'जिन्दगी एक परीक्षा है। कोई पास होता है, कोई फ़ेल।' और रोज सोचती रही हूँ कि उस परीक्षा में तो पास गयी अच्छे नम्बरों से। इस जिन्दगी की परीक्षा में पास हो पाऊँगी कि फ़ेल हो जाऊँगी मैं?"

"मुझसे पूछ, पास होगी तू फ़र्स्ट क्लास में। देख, सुन्दर, सुशील, योग्य सन्तान दीजिये उसे, जो पूरे खानदान का चिराग़ रोशन कर दे। अच्छी तरह समझ ले पारा, हम औरतों का परीक्षा-फल बस यहीं औलाद होनी है। बढ़िया सन्तान हुई तो समझो नारी का जन्म सार्थक हो गया। ओ हो, इतना लजा क्यों रही है तू?" कि इतने में भाभी आ गयी पार्वती की।""बिलकुल बदहवास-सी हो रही थी और मोह में डूबकर बोली—"हाय मैया, सारे घर आँगन ढूँढ़ती फिरी और तुम यहाँ कोने में छिपी बैठी हो। चलो उठो, भाँवरों का वक़्त हो आया, नहओ- धोओ, कपड़े बदलो!"

× × ×

पार्वती को नहलाया जा रहा था, उस समय आँगन का घेरा बनाकर बैठी तीन चार बूढ़ी औरतें गीत गा रही थीं—

मड़वे के बीच लाडो ने केश सुखाये,
भैया लेंगे कन्यादान, लाडो ने केश सुखाये,
भाभी लेंगी कन्यादान, लाडो लाल सुखाये,
मड़वे के बीच लाडो ने केश सुखाये""।"

हाय बाबुल का नाम क्यों न लिया गीत में ? हाय मैया का नाम क्यों न लिया गीत में ? हाय, पार्वती के मैया-बाबुल दोनों ही नहीं रहे । वे दोनों जिन्दा होते तो आज अपनी आँखों से देखते—उसके भैया ने, उसको भाभी ने कितने जतन से, कितने लाड़-दुलार से उसे पाला-पोसा और आज कितनी लगन से, कितने मोह से उसके लिये अपते प्राणों की आहुति दे रहे हैं । हाय, कोई नहीं है, उसके भैया-भाभी का यह त्याग, यह बलिदान, यह प्यार देखने वाला ।

पार्वती के ओष्ठ-सम्पुट मूक रहे, केवल आँखों से झर-झर करके जल बहता रहा और सामने बैठी सभी सखी उन आँसुओं को देखती खुद आँसू बहाती रही देर तक । फिर आँचल से आँखें पोंछकर रुँधे कण्ठ से बोली—"रो मत ।"

× × ×

आँगन में, मड़वे के नीचे, पंडित ने चौक पूरा फिर उसपर समिधायें सजाने लगा । अभी थोड़ी देर बाद, अग्नि को साक्षी करके कोई पार्वती को वरण कर लेगा । अग्नि को साक्षी करके पार्वती किसी को अपना तन-मन-जीवन समर्पित कर देगी । फिर अग्नि की परिक्रमा करेगी, किसी के पीछे-पीछे चलकर सप्तपदी पूरी करेगी ।

विद्या ने एक बार वहाँ से उठने का उपक्रम किया, तो पार्वती ने उसकी बाँह पकड़कर रोक लिया—"मत छोड़ सखी, अकेली मत छोड़ ।" नये वस्त्रा-भूपण पहने, भाँवरों के लिये प्रस्तुत पार्वती और उसकी सखी उसी तरह कोने में चुपचाप बैठी थी कि भैया आये बाहर से । उनके पीछे रामदेव भैया आया । उन दोनों पुरुषों ने इन दोनों को शायद नहीं देखा । भैया वहीं जमीन पर बैठकर नोट गिनने लगे तो रामदेव भैया ने उनके आगे एक बड़ा-सा बण्डल रखकर कहा—"दादा, पारो के ये कपड़े देखलो ज़रा । शहर जाकर दरजी के सिर पर चढ़ा रहा तब सिल पाये हैं । देखो तों, ठीक सिले हैं न ?"

"बहुत सुन्दर सिले हैं ।"—भैया ने शायद कपड़े उलट-पलटकर देखे और कहा—"रामदेव, तुझपर बड़ी मेहनत पड़ी है । शादी ठहराने से लेकर आज तक तूने कित्ता पसीना बहाया है ।"

रामदेव भैया बोला—"दादा, तुम तो जानते हो, पारो मुझे बचपन से प्यारी रही है—बहुत प्यारी बहिन है मेरी। चाचा-चाची रहे नहीं तो हम लोगों पर ज़िम्मेदारी आ गयी। आज अपनी बहिन को किसी दूसरे के हाथों में सौंप देंगे। ऋण उतर जायेगा सिर से।"

भैया ने ज़रा हँसकर कहा—"यह ऋण नहीं उतरता है पगले? जब तक ज़िन्दा रहेंगे, दबे रहेंगे लड़के वालों से। अकेली बहिन है हमारी। वह सुखी रहे इसके लिये हमें सारी ज़िन्दगी उन लोगों की चरण-पूजा करनी होगी। सिर झुकाये रहेंगे उनके क़दमों में कि हमारी पारो को दुख न दें कभी। हम चाहे नंगे-उघारे रह लेंगे, भूखे-प्यासे रह लेंगे, उन लोगों की हर माँग हर ख्वाहिश पूरी करते रहेंगे कि हमारी लाडली बहिन को सुखी रखें।"

धीरे से रामदेव ने कहा—"बहिन दे रहे हैं उन्हें तो सब करना ही होगा ताउम्र। सिर झुकाये रहेंगे अपना उनके आगे।"

भैया को जाने क्या हो गया उस बेला, कहने लगे—"रामदेव, तुझे तो याद होगा, चन्दनसिंह ने एक बार बाग़ों में मुझे 'साला' कह दिया था तो मैंने उसकी क्या दुर्गति कर दी थी—कितना कुचला था उसे। इस लफ़्ज से मुझे कित्ती चिढ़ थी कि कोई मुझे 'साला' कह दे तो छाती पर चढ़कर ख़ून पी लूं उसका। पर अब, आज तो मैं सचमुच हीं 'साला' हो जाऊँगा।'—'साला है यह!'—लोग कहते रहेंगे और सिर डाले चुपचाप सुनता रहूँगा। सोचकर अजीब-सा लगता है कि लो, 'साला' बन रहा हूँ मैं। पारो की ससुराल जाया करूँगा, वहाँ ठहरूँगा। लोग पूछेंगे—'कौन है यह?' और छूटते ही कोई कह देगा—'साला है पाल का।' हँसी भी आती है और कुछ अजीब सा लग रहा है भाई, कि यह गाली अपने कानों से सुनो और खुश होओ कि—हाँ जी, हम तो साले हैं किसी के!"

रामदेव खिलखिलाकर हँस पड़ा, हंसते-हँसते बोला—"दादा, बिलकुल बच्चे हो गये तुम तो! अरे, यह सब कोई इस तरह सोचता है? बहिन है तो उसका ब्याह करना ही है, किसी को बहनोई बनाना ही है और तब हम साले हो ही जायेंगे—इसमें बुरा-भला क्या है? चलो, बाहर चलो ज़रा। बाजे वाले तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं।"

× × ×

बीस-पच्चीस मिनट बाद, दोनों भाई घर में घुसे बात करते तो पार्वती की भाभी और विद्या स्तब्ध-सी खड़ी थीं ओसारे में। पार्वती कहीं भीतर थी। भाभी का ऐसा उतरा-उतरा-सा चेहरा देखकर रामदेव ने चौंककर पूछा—"क्या हुआ भाभी ?"

"पारो कह रही है, वह शादी नहीं करेगी। अब बोलो, क्या होगा ?" और इतना कहकर वहीं दीवार के सहारे बैठ गयी भाभी और आँखों से आँचल लगाकर रोकर बोली—"अरे, उसे समझाओ कोई। हाय भगवान्, अब क्या होगा ?"

""आग की तरह, पल भर में, यह खबर घर-बाहर चारो ओर फैल गयी कि पार्वती ने भाँवरों पर जाने से इनकार कर दिया है वह शादी नहीं करेगी।

""पार्वती के भाई अपराधी की तरह मुँह सिये ओट में खड़े थे और रामदेव सामने बैठा पार्वती को अनुनय-विनय करके समझा रहा था और पार्वती शान्त, मौन, स्थिर बैठी थी अपलक होकर। अन्त में रामदेव ने प्यार से कहा—"अब चल, उठ मंडप में चल।" और उसकी बाँह पकड़कर उठाने लगा तो जैसे पार्वती सोते से जागी। एक बार रामदेव भैया की स्नेहभरी और आग्रहभरी आँखों पर अपने तारे रोके, एक बार होठ काँपे और फिर अस्फुट-सा स्वर गूँजा—"नहीं, मैं मंडप तले नहीं जाऊँगी। तुम मुझे काट डालो भैया, तो भी नहीं जाऊँगी!" और उन नीलकमल जैसे नयनों में जल भर आया कहते-कहते और उन्हीं जलभरी आँखों से रामदेव को निहारती कम्पित वाणी में कहने लगी—"मेरी यह देह भैया के अन्न से पली है, मेरा रक्त-मांस सब भैया का है, मेरी यह जान भैया की है। मेरे कारण मेरे भैया की आत्मा इतनी पीर हो, यह मैं कैसे सह पाऊँगी ? कैसे सह पाऊँगी ? तुम्हीं बतलाओ, रामदेव भैया, इतनी पापिन मैं कैसे हो जाऊँ कि अपने सुख के लिये उनके कलेजे को कुचल दूँ ? हाय, मेरे भैया ने किसी की गाली नहीं सही है कभी। मैं अपने भैया से किसी को 'साला' नही कहने दूँगी, मैं उन्हें किसी का 'साला' नहीं होने दूँगी। रामदेव भैया, मैंने भगवान् की शपथ खा ली है अभी। मैंने अपनी भैया की, अपने बापू की शपथ खा ली है अभीं। मैं तेरे हाथ जोड़ रही हूँ, तू मुझसे यह पाप मत करवा बीरन, मैं तेरे पैरों पड़ूँ भैया, मुझे बचा ले, बचा ले मुझे !" और पार्वती उन मेंहदी-रंगे हाथों से रामदेव के

धूल भरे पैर पकड़ने लगी तो रामदेव पागलों की तरह वहिन के हाथ पकड़कर रो उठा।....

और तब पार्वती के भाई उसके सामने आ खड़े हुये ! घड़ी भर उन दोनों की सिसकियाँ सुनते रहे फिर धीरे से पुकारा—"पारो !"—कोई कुछ न बोला।

भाई वहीं बैठ गये। रामदेव आँखें पोंछता पोछे को खिसक गया। आँसुओं से धुला मुख लिये पार्वती धरती की ओर निहारती रही। भाई ने उसके मुख पर नज़र रोककर धीर-गम्भीर स्वर में कहा—"पारो, मुझसे बहुत बड़ी ग़ल्ती हो गयी है। पारो, मुझसे बहुत भारी अपराध हो गया है। मैं तुझसे माफ़ी माँग रहा हूँ। तू मुझे माफ़ कर दे पारो ? मैं तेरे चरण...." और भैया उसके चरणों की ओर दोनों हाथ बढ़ाने लगे तो बाण-विद्ध घायल पंछी की तरह पार्वती ने पलक मारते अपने भैया के चरणों में सिर रख दिया अपना और 'हाय भैया ! कहकर करुणा क्रन्दन कर उठी।....झर-झर आँसू गिराते भाई ने उसके गीले केशों वाला सिर उठाना चाहा दोनों हाथों से, परन्तु पार्वती उन चरणों में अपना सिर गड़ा गयी और चरणों को आँसुओं से भिगोती विलख-विलखकर कहती गयी—"मुझे मार डालो भैया, मुझे मार डालो। हाय, मैं क्यों पैदा हुई ? हाय, मेरे भैया ने कभी किसी की गाली नही सही है, हाय, मेरे भैया ने गाली नहीं सही, गाली नहीं सही...."

....रामदेव दीवार से सिर टेके बैठा रोता रहा और भैया रोते रहे दूर कोने में खड़ी थर-थर काँपती भाभी भी रोती रही और उधर किवाड़ों में मुँह दिये सहेली विद्या सिसकती रही और किसी से कुछ कहा नहीं गया, बोला नहीं गया किसी से और आँसुओं की नदियाँ वह गयीं सारे घर में।

× × ×

वर के पिता ने पार्वती से मिलना चाहा था। पार्वती ने तत्काल स्वीकृति दे दी थी और अब वे यहाँ पार्वती के सामने बैठे थे। पार्वती के तेजोद्दीप्त, लज्जा वनत, सरल मुख को निहारते वात्सल्य से विभोर होकर कहने लगे—"बेटी, हमने ज़रा भी बुरा नहीं माना है। तुम यक़ीन करो, इस घटना से न किसी का अपमान हुआ है और न किसी न किसी की फ़जीहत हुई है। जिस शान से हम आये थे,

उसी शान से लौट जायेंगे। सारे बाराती एक अजीब-सी प्रसन्नता महसूस कर रहे हैं और बेटी, कोई भला कहेगा भी क्या ? यह शादी मेरे बेटे की किसी खामी से रुकी नहीं है और न तुम्हारे किसी कलंक के कारण रुकी है। यह शादी रुकी है सिर्फ़ बात पर। इस देश के जवानों बात पर अपने शीश कटवा दिये हैं। इस मुल्क की बेटियों ने बात की रक्षा के लिये अपनी कुर्बानियाँ दे दी हैं। तुम उन्हीं की औलाद हो—अपनी आन पर मिटने वाली। बेटी, मैं तो बहुत खुश हूँ। तुम्हारा यह त्याग देखकर मेरी छाती फूल उठी है। पुत्रवधू के रूप में तुम्हें नहीं पा सका कोई बात नहीं, बेटी तो तुम मेरी हो न ? बेटी तो रहोगी न ?"

पार्वती ने निस्संकोच भाव से आगे को झुककर वृद्ध के चरण छू लिये। फिर उस धूलि को माथे से लगाकर सजल-नयना होकर कहा—"आप मेरे पिता हैं और सदा मेरे पिता ही रहेंगे। आपकी सेवा नहीं कर पाऊँगी, यही दुख है। अपनी इस अधम बेटी को भूल मत जाइयेगा कभी।"

"तुम्हें भुला दूँगा बेटी ? यह भी क्या मुमकिन है ? तुम्हारी यह छवि तुम्हारी यह वाणी हमेशा-हमेशा के लिये मेरे दिल में समा गयी है। लेकिन तुम बुरा मत मानना बेटी, एक बात और कहूँगा तुमसे। मैं तुमसे बहुत बड़ा हूँ और मैंने दुनिया देखी है। मैंने लोगों को अपना वचन निभाये भी देखा है और मैंने लोगों को राह से कुराह जाते भी देखा। बेटी, इन्सान बहुत बलवान् भी होता है और बहुत कमज़ोर भी होता है। तुम्हारे बारे में कोई बुरी बात नहीं सोच रहा हूँ, लेकिन मान लो, किसी दिन तुम्हारे मन में घर-गिरस्ती बसाने की ख्वाहिश जाग उठे और ऐसी ख्वाहिश होना कुछ कठिन नहीं। देखो बेटी, तुम्हारी अभी बहुत थोड़ी उमर है, क्या जो कुछ मैं कह रहा हूँ,""सम्भव नहीं है ? क्या मैं ग़लत कह रहा हूँ ?"

पार्वती ने शान्त स्निग्ध वाणी से कहा—"आप सही कह रहे हैं पिताजी यह ज़रूर सम्भव है, लेकिन मुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी है, मैंने यह पहिले ही सोच लिया है। यदि किसी दिन मेरे मन में ऐसी दुर्बलता जागी तो नयन मूँदकर आपके द्वारे जा खड़ी होऊँगी। वह भी तो मेरा अपना घर है न पिताजी ?"

वृद्ध की आँखों में पानी छलछला आया तत्काल। रुँधे गले से बोले

"शाबाश बेटी, बस, अब और कुछ नहीं कहना है, कुछ नहीं सुनना है। सब हो गया खतम। तुम सलामत रहो बेटी!"

× × ×

मंडप में विवाह के मन्त्र तो नहीं गूँजे, परन्तु यज्ञ हुआ फिर। स्वस्ति-वाचन किया गया। घराती और बराती सब उसी आँगन में इकट्ठे होकर पवित्र वेद मंत्रों को सुनते रहे और यज्ञ का धुआँ मँडराता रहा आँगन के ऊपर और फिर खुशी-खुशी बारात को भोजन कराया गया और खुशी-खुशी बारात विदा भी हो गयी।

प्रोफ़ेसर चुप हो गये थे और कमरे में निस्तब्धता छा गयी थी। बैरिस्टर सिनहा ने हौले से पूछा—"फिर? फिर क्या हुआ?"

प्रोफ़ेसर ने निरुद्विग्न होकर कहा—"आगे की कहानी बहुत संक्षिप्त है। कहानी का नायक तीन साल बाद फिर उसी कस्बे में आ पहुँचा था—साथी रामदेव से मिलने और फिर उसी शाम को किसी अदम्यत प्रेरणा के वशीभूत होकर वह उस पीपल के पेड़ तले जा खड़ा हुआ था, जहाँ से पचास गज के फ़ासले पर वह दरवाजा दीखता था जहाँ किसी दिन वह सेहरा बाँधकर आया था।

सिर डाले चुपचाप वहाँ से लौट आया था वह और फिर सारी रात उसे नींद न आयी थी और सुबह उठा था तो उसकी आँखें सुर्ख थीं और सिर बुरी तरह दर्द कर रहा था।...."

"....उसे शायद पता न था, पार्वती धीरे-धीरे 'डाक्टर साहब' हो रही थी। पहिले उसने होमियोपैथी पढ़ी और थोड़ी-सी दवायें खरीद लायी शहर से और उनका प्रयोग किया टोले-मुहल्ले के छोटे-मोटे मरीज़ों पर। फिर उसकी यह 'लिप्सा' बढ़ती ही गयी। फिर शायद कहीं नर्सिंग की ट्रेनिंग भी ले आयी। फिर यहाँ अपने कस्बे में एक छोटी-सी डिस्पेंसरी खोली और यों वह बच्चों और औरतों की 'डाक्टर साहब' बन रही थी धीरे-धीरे।...."

"....बिना फ़ीस के चारों-पाँचों मरीज़ एक-एक करके उठते गये दवा ले-लेकर तो पार्वती ने इधर बग़ल में खड़े मरीज़ पर नज़र डाली। रामदेव ने शाइस्तगी से कहा—"डाक्टर साहब, कोई सिर-दर्द की दवा है आपके पास?"

"पार्वती ने हँसी दबाकर पूछा—"पहिले सिमटम्स तो बोलो कुछ, किस तरह

का दर्द है ? वायीं ओर या दाहिनी ओर या पीछे की ओर। वयान करो ठीक-ठीक।"

"डाक्टर साहब, मेरे दर्द नहीं है। मरीज़ आपका बाहर खड़ा है।" और रामदेव ने वाहर की ओर झाँककर कहा—"आजा भाई, ले, डाक्टर साहब के आगे अब अपनी तकलीफ़ बयान कर। कहाँ दर्द हो रहा है तेरे, साफ़-साफ़ बतला।"...

...पार्वती मूक होकर बैठी रही, किसी को अपने सामने पाकर। इस मरीज से भी कुछ न कहा गया और 'अभी आया' कहकर रामदेव बाहर निकल गया।...

...काँपती उँगलियों से उसके माथे पर वाम लगाती पार्वती ने हौले-हौले पूछा—"शादी कर ली ?"

"नहीं।?"—उसने पलक बिना उठाये इतना ही कहा।

"शादी कर लो कहीं।"

वह कुछ नहीं वोला।

"दुख लगता है क्या ?"

"नहीं। वहुत सुखी हूँ।"—उसने कहा था और फिर यही इतनी कहानी प्रतिवर्ष 'रिपीट' होती गयीं थी। प्रतिवर्ष फिर वह उस कस्बे में रामदेव से मिलने जाता रहा था और प्रतिवर्ष पार्वती से भेंट होती रही थी और प्रतिवर्ष कहीं-एकान्त कोने में हलकी-हलकी आवाज़ें गूँजती रही थी...."शादी कर ली ? नहीं। शादी कर लो कहीं। दुख-तो नहीं लगता है ? नहीं। वहुत सुखी हूँ !"

और प्रतिवर्ष पार्वती का कर्म-क्षेत्र विस्तृत होता गया था। भाई ने, रामदेव भैया ने सारी शक्ति लगा दी थी और वह ज़रा-सी डिस्पेंसरी धीरे-धीरे रूप वदलती गयी थी और पार्वती के अथक परिश्रम और अध्यावसाय को अन्त में एक दिन साकार रूप मिल गया था—एक विशाल जच्चा-बच्चा अस्पताल।....

"और वैरिस्टर साहब, यह कहानी इतनी ही है। यह कहानी आज से बीस वर्ष पहले की है। इन बीस वर्षों में दुनिया ने बहुत तरक्की कर ली और हमारा देश अब वहुत उन्नत हो चुका है। पिछले सब कुसंस्कार धोये जा चुके हैं और सदियों से नारी और शूद्र के साथ जो ज़ुल्म होते रहे, उनका प्रतिशोध ले लिया गया है समाज से। आज की उद्‌बुद्ध भारतीय नारी अपना हर अधिकार पाने के

लिये सजग है । और बैरिस्टर साहब, साहित्य भी बदल चुका है हमारा, साहित्य के माप-दण्ड भी बदल गये । हमारी नारियाँ आज पाश्चात्य नारियों से बराबर की टक्कर ले रही हैं । हमारा साहित्य भी पाश्चात्य-साहित्य से होड़ ले रहा है । भला इस उन्नति-काल में ऐसी आर्ट से रहित और नितान्त अर्थ-हीन इस कहानी को कौन सुनना पसन्द करेगा ?

"केवल हमीं लोगों ने आज यह कहानी कह-सुन ली और एक हलकी-सी खुशी महसूस कर ली । लेकिन शायद हम लोग बूढ़े हो रहे हैं । हो सकता है, हमारी नज़रिया ही ग़लत हो और यह कहानी सचमुच अर्थ-हीन हो । आपका क्या ख़याल है ?

बैरिस्टर सिनहा ने धीरे से कहा—"शायद आप सही कह रहे हैं । लेकिन मैं आपसे एक बात और पूछूँगा । इस कहानी का नायक""नायक आप ही हैं न ?"

प्रोफ़ेसर ने शान्त भाव से कहा—"जी हाँ, नायक मैं ही हूँ । वह अभागा और वह भाग्यशाली आदमी मैं ही हूँ । आपका सिगार बुझ गया है, इसे जला लीजिये ।"

★

अपनी अपनी नजर

बाप बुढ़ौती पर पहुँचे, फिर की गाँव भी जिजमानी ठाकुरदास के हवाले न हुई। ठाकुरदास तब भरी जवानी में था। सुबह-शाम चार सौ दण्ड पेलता और सिर से चार इंच ऊँची लाठी लिये, मोछें सम्हाले झूमता था। चौड़ी किनारी की धोती पहनता और भरे हुए सीने पर आधी बाहों की बंडी और बंडी के ऊपर काली-स्याह वास्कट रहती।

वास्कट के बटन खुले रहते, आँखों में पतला सुरमा लगा रहता। सिर पर लखनवी पल्लू की टोपी लगाये, तेल लगा नुकीला जूता पहने, चर्रमर्र करता गाँव की सड़क पर टहलता तो पूरा "छैला" दीखता।

राहगीर उधर से निकलते, तो ठिठक कर ठाकुरदास से राह पूछते—किसी गाँव की दूरी पूछते। तब ठाकुरदास लाठी टेक कर खड़ा हो जाता, हाथ से राह बताता, मील जोड़ कर पूरी कहता। और लाठी फिर कन्धे पर रख लेता और "चौबोला" या "बहरे-तवील" गाता हुआ आगे चल देता। दूर, कहीं खेतों-खलिहानो में काम करते किसान और मजदूर फ़ासले से आती उस गीत-ध्वनि को सुन कर कहते, "जवानी चढ़ी है इस पर!"

जवानी तो सचमुच चढ़ी थी। सिर पर घर-गृहस्थी का बोझ नहीं। घर में भैंस पली थी, दस सेर दूध देती थी। ठाकुरदास दूध पीता, दही खाता, घी खाता।

गाँव में बुन्नु गुरू का अखाड़ा बहुत दिनों से चल रहा था। ठाकुरदास ने उस्ताद को गुड़ की भेली और लाल लंगोट देकर 'दीक्षा' ली थी। दाँवपेच सीखे थे और कुश्तियाँ लड़ता था।

पर बड़े आदमियों के पढ़े-लिखे लड़के ठाकुरदास से बात न करते थे। वे उसकी साज-सज्जा देख कर, धोती और वास्कट देख कर हँसते। और फिर धीरे से कहते—"पूरा बैल है!"

लेकिन ठाकुरदास को इनकी कोई परवाह न थी। वह तो दिनभर मस्ती से घूमता और मस्ती से खाता-पीता था।

ठाकुरदास गाँव के नाई का लड़का था और ठाकुरदास की माँ नहीं थी। दो साल हुए, उसकी माँ आँधी में, छत से गिर कर मर गयी थी और अब घर की देखभाल बहिन करती थी। बहिन का व्याह हो चुका था और गौना अब होने का था। गौना हो जायेगा तो वह भी अपनी ससुराल चली जायेगी। पर अभी तो घर का बोझ उसी पर था। जिजमानी में माँ की जगह वही आती-जाती थी। हरप्यारी उसका नाम था। और अब वह सयानी हो गयी थीं। गोरी सलोनी थी और लजीली भी। क़द तनिक उठता था। सुकुमार लता-सी देह थी—वह यौवन के भार से और भी रम्य हो उठी थी। देख कर लगता मानों किसी ऊँची जाति की बेटी हो। लहँगा पहनती थी और रंग-बिरंगे दुपट्टे ओढ़ती थी। पैरों में बिछुये और कमर पर चाँदी की करधनी। गाँव की धूल भरी गलियों में, जब धीरे-धीरे, नीची नजर किये, अंचल में हाथ दिये वह चलती, तो हौले-हौले बिछुये बजते। देखने वाले देखते रहते, सुननेवाले सुनते।

और इस गाँव के पूरे आठ आना भर के मालिक थे ठाकुर रनजीत सिंह। गाँव के छोर पर उनकी हवेली, सेनानी की तरह, सिर ऊँचा उठाये खड़ी थी। कोस भर की दूरी से हवेली की अटारी दिखती थी। दरवाज़े पर हाथी बराबर फाटक चढ़ी थी और भीतर चार बीघे का लम्बा-चौड़ा आँगन था। आगन के उस पार हवेली की पच्चीकारी की हुई, काठ की काली चौखट चमकती थी। भीतर जनानखाना था।

इन ठाकुर साहब का बड़ा दबदबा था। बीस कोस तक उनकी धाक जमी थी और लोग उनका नाम सुन कर सिर झुका लेते थे। बड़े दरियादिल और ग़रीब-परवर आदमी थे। अदना से अदना आदमी के लिए कोई मौक़ा पड़े, इज्जत-आबरू का सवाल हो तो वे जान हथेली पर लिये खड़े मिलते थे।

ठाकुर साहब के कोई बाल-बच्चा न था। एक भाई था छोटा। वह किसी फ़ौजदारी में मारा गया। उसी के बेटा-बेटी पालपोस लिये थे। और अब वे ही दोनों औलाद की जगह हो गये थे। भतीजी का अभी व्याह न हुआ था और भतीजा पास के शहर में पढ़ता था। उसका नाम शेरसिंह था।

यह हवेली भी ठाकुरदास की जिजमानी में थी। बाप भी यहाँ आते, बहिन भी आती और काम पड़ता तो ठाकुरदास भी हाज़िर होता। जमींदार साहब नाई के इस लड़के को प्यार की नज़र से देखते। सामने पड़ जाता तो अक्सर पूछ बैठते, कितना दूध मिलता है तुझे?" सुन कर ठाकुरदास हँस देता और ठाकुरदास को देख कर हँसता शेरसिंह। उसकी आँखों का सुरमा देख कर हौले से कहता, "इडियट!" और जब-तब वह नाई की गोरी-सलोनी. जवान लड़की को भी देखता देख कर मन ही मन कहता, "क्या ब्यूटी है!"

÷ + ÷

हरप्यारी के आँगन में आकर ठाकुर साहब की धीमरी ने कहा—"ठकुरानी माँ ने तुम्हारे बापू को बुलाया है, हरप्यारी!"

हरप्यारी वटलोई में दाल डालने जा रही थी। थाली हाथ में लिये वह आँगन में आ खड़ी हुई और बोली—"बापू तो नगरा गये हैं। भैया भी ननिहाल चला गया है। ऐसा क्या काम है, जो अम्माँ ने इस बेला बुलाया हैं? मैं हो आऊँ, कहो तो?"

नौकरानी बोली—"कोई ज़रूरी काम ही होगा। तुम्हीं चली जाओ।"

नौकरानी चली गई। हरप्यारी ने पतीली में दाल छोड़ कर, चूल्हे की आँच कम कर दी और दरवाज़े की साँकल चढ़ा कर चल दी ठाकुर साहब की हवेली की ओर।

साँझ उतर गयी थी और घरों में दिये जल गये थे। गली सूनी हो रही थी। रास्ते में- हलवाई की दूकान पड़ी। दूकान पर लालटेन की रोशनी हो रही थी और दो-तीन रसिक लोग बैठे थे और कोई ज़ोर-ज़ोर से गा रहा था—

"इस दरख्त के नीचे नाज़नी,
अभी पलट कर आता हूँ।"

हरप्यारी सामने से सिर डाले निकल गयी—चुपचाप!

फाटक पर पहुँच कर हरप्यारी तनिक ठिठकी। सिर का अंचल हाथ से ठीक कर लिया और पैर साध कर आँगन तक आ गयी। कोई बोलता—चालता नहीं जान पड़ा। किवाड़ें आधी बन्द थीं। चौखट पर लालटेन लटकी थी। हरप्यारी

ने वहीं से पुकार लगायी—"अम्मा !"—किसी ने जवाब न दिया। हरप्यारी घर के आँगन में भीतर आ खड़ी हुई।

कोई नहीं है ! हरप्यारी चारों ओर सिर घुमा कर देखने लगी—कोई नहीं है ! उसका कलेजा धक-धक करने लगा।

तभी जाने किसने भीतर से पुकार कर कहा—"हरप्यारी !"

जान में जान आ गयी जैसे। आश्वस्त होकर बोली—"हाँ भैया !"

यह शेर सिंह था—ठाकुर साहब का भतीजा। हरप्यारी ने शान्त स्वर में पूछा—"भैया, अम्माँ कहा हैं ? घर में कोई नहीं दीखता।"

शेरसिंह बोला—"अम्माँ हीरालाल के यहाँ गयी हैं. टीके में।" और उसके पास को अ.कर बोला—"आओ-आओ, भीतर आ जाओ !"

हरप्यारी ने लजा कर कहा—"चूल्हा जलता छोड़ आयी हूँ।"

पर शेरसिंह ने फिर से कहा—"आओ-आओ !"

"फिर आऊँगी भैया !"

तब शेरसिंह उसके आगे आ खड़ा हुआ और जाने कैसी आवाज़ में पुकार उठा—"हरप्यारी !"

यह कैसी आवाज़ है—यह कैसी पुकार है !

शेरसिंह ने अपना हाथ बढ़ाया, हाथ बढ़ा कर हरप्यारी की गोरी-गोरी कलाई पकड़ ली ! हरप्यारी की सम्पूर्ण देह में झन्न-से हो गया ? वह कुछ बोल न सकी।

शेरसिंह का साहस बढ़ा। हरप्यारी की कलाई पकड़े काँपते-से स्वर में कहने लगा—"तुम मुझे कब तक तड़पाओगी हरप्यारी !" पलक मारते मानों हरप्यारी को होश लौट आया। भयभीत स्वर से कहा—"भैया !" और झटका दिया ज़ोर से। कलाई छुट गयी। हाय, वह क्या करे अब, क्या करे ? सम्पूर्ण साहस बटोर कर वह दरवाजे की ओर बढ़ी काँपते पैरों से। वह बढ़ी तो शेरसिंह भी बढ़ा और उसने हरप्यारी का रास्ता रोक लिया। हरप्यारी उसे अपने सामने इतने निकट देख कर थर-थर काँपने लगी। जीभ तालू से चिपट गयी। कण्ठ सूख गया उसका।

जाने कैसे अजीब से स्वर में शेरसिंह बोला—"सताओ मत ! मेरे दिल के टुकड़े मत करो।"

हरप्यारी ने कठिनता से कहा—"भैया !"

पर शेरसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया और हाथ पकड़ कर उसे अपने पास खींचने लगा। हरप्यारी के होश उड़ गये। शेरसिंह उसे पास खींचता गया—खींचता गया कि सहसा बाहर के आँगन से किसी ने पुकार कर कहा—"अरे हरिया, चौपाल पर रोशनी नहीं की तूने ? कहाँ मर गया अभागे !"

और पलक मारते शेर सिंह ने हरप्यारी को छोड़ दिया। और जाने किधर छिप गया फ़ौरन।

\+ \+ \+

ठाकुर रनजीत सिंह से मेघराज की पुश्तैनी अदावत थी। मेघराज भी कोई साधारण आदमी न था। बनिया था तो क्या हुआ, उसके ठाट-बाट किसी रइसज़ादे से कम न थे। कोठी थी उसकी ख़ूब शानदार। कोठी में झाड़-फ़ानूस लगे थे और गद्दियाँ जमीं थी। पेंचदार हुक्का सजा रहता था हरदम बढ़िया खमीरे की खुशबू से उसकी कोठी सुवासित रहती थी।

मेघराज को पहलवानी का भी शौक था। मोठा हो गया था और पेट उसका बाहर को निकल आया था, फिर भी साँय-साँय करता कसरत कर लेता और जिस्म की चरबी घटाता। दस बार उसकी नज़र ठाकुरदास पर पड़ी। अन्त में एक दिन रास्ते ही से पुकार लिया और पास बिठा कर कहा—"अरे भाई, हमें भी कुछ दाव-पेंच सिखाओ कुश्ती के !"

ठाकुरदास हाथ जोड़ कर बोला—"कैसी बातें करते हैं सरकार ? मैं तो आपका सेवक हूँ।"

और सेठ का अखाड़ा खुदने लगा। रोज़ ठंढई घुटने लगी। तेल की मालिश होती, मुगदर फिराये जाते, पहलवानों के जोड़ तैयार होते।....

....इधर ठाकुर साहब की भतीजी की उमर बढ़ रही थी और अब चारो ओर 'वर' की तलाश हो रही थी। ठाकुर साहब चाहते थे कि किसी पढ़े-लिखे ऊँचे ओहदे के लड़के से जैमन्ती की गाँठें जुड़ें। पर लिखे-पढ़े लड़के इस सम्बन्ध के लिये राज़ी नहीं होते। वे तो 'एजुकेटेड' और 'कल्चर्ड' लड़की चाहते थे और जैमन्ती सिर्फ़ दर्जा चार तक ही पढ़ी थी। पर जैमन्ती को सजना ख़ूब आता था। सारे दिन सजी-बजी रहती, सारे दिन पान खाती, पान से ओठ लाल रहते। मेंहदी

से हथेलियाँ रँगी रहतीं। किशोरावस्था कबकी समाप्त हो चुकी थी। देही में खून छलकता था, गालों पर सुर्खी छायी रहती और आँखों में 'प्यास' झाँकती।....

उसका अचानक एक दिन मेघराज से सामना हो गया गली में। कहीं बुलावे में जा रही थी। दबी निगाहों से उसने मेघराज को देखा--दृष्टियाँ मिल गयीं पल भर को।

जैमन्ती आगे बढ़ गयी, तो मेघराज ने अपने पिछलगुआ से पूछा और उसके बारे में सब कुछ जान लिया।

फिर दूसरे दिन जब भंग छनी और नशे की लहर आयी तो मस्ती में आकर सेठ गा उठा—"रेती में बंगला छवाय दे बालम ! आवै लहर जमुना की !"

ठाकुरदास इस गाने को सुन कर हँसने लगा। और तब नशे की झोंक में मेघ-राज कह उठा—"अरे, वह तो स्वर्ग की अप्सरा है—परी है परी !"

'-कौन सरकार ?"

"वही ! अरे वही !....

\+ ÷ +

....हरप्यारी ने उस घटना की किसी से चर्चा तक न की। किससे कहती वह ? कहकर क्या पाती ? ठाकुर साहब के भतीजे शेर सिंह का कोई क्या बिगाड़ लेगा ? उल्टे हरप्यारी की ही बदनामी हो जायेगी गाँव भर में। पर वह मन ही मन, अकेली बैठी सोचती रहती कि कैसे-कैसे सब हुआ और उसका दिल धड़कने लगता और मन ही मन कहती....जो कहीं उस घड़ी अम्माँ न आ जातीं तो क्या होता फिर नारायण, क्या होता ?

पर शेरसिंह बहुत प्रसन्न था। अपनी प्यास बुझाने के लिये वह और कोई मौक़ा ढूँढ़ रहा था और आखिरकार उसे मिल भी गया मौक़ा।

....ठाकुर साहब के यहाँ 'रतजगा' हो रहा था, यानी सारी रात ढोलक बजेगी और सारी रात गीत गाये जायेंगे। बात यह थी कि तीन साल के बाद इस बार शेर सिंह 'हाई स्कूल' में पास हुआ था इसी की खुशी मनायी जा रही थी। कुछ आमदनी होगी, हरप्यारी का जाना जरूरी था और वह जाना नहीं चाहती थी। पर जायेगी कैसे नहीं, जाना ही पड़ेगा।

उसने रुक-रुक कर अपने बापू से कहा—"इतनी रात को मैं अकेली लौटूंगी कैसे ?"

बापू बोले—"क्यो, ठकुरानी के पास सो जइयो, डर क्या है ?"

"नहीं, डर तो कुछ नहीं है—"और आगे हरप्यारी कुछ नहीं कह सकी, पिता को कुछ नहीं बतला सकी।....

....दृश्य बदल गया। हवेली का आँगन औरतों से भरा था। तड़ातड़ ढोलक बज रही थी। गीत हो रहे थे, पानों का थाल घूम रहा था और पंखे चल रहे थे। खूब शोरगुल मचा हुआ था। हरप्यारी को बड़ा अच्छा लग रहा था। जैमन्ती के पास बैठी वह बड़ी दत्तचित्त होकर गीत सुन रही थी। गानेवाली कहीं बाहर से आयी थी और 'राधाकृष्ण' के बड़े सुन्दर-सुन्दर गीन सुना रही थी।

अचानक अम्माँ ने हरप्यारी का कंधा हिला कर ज़ोर से कहा—"उठो तो!"

"क्यों अम्माँ, क्या काम है ?"

"बेटी, ज़रा छत पर चली जा, दो कंडे उठा ला और आग सुलगा दे। यह ढोलक बजानेवाली बुढ़िया तमाखू पीती है। सारी रात आग की ज़रूरत पड़ेगी।"

....दृश्य बदल गया। हरप्यारी कंडे ले कर अँधेरे जीने से नीचे उतर रही थी। कितना अन्धाकुप्प है! अरे नीचे से रोशनी क्यों नहीं आ रही है? कोई बाहर से जीने की किवाड़े दे गया क्या? हरप्यारी को अचम्भा लगा—हरप्यारी को थोड़ा डर लगा और सँभल सँभल कर जीने की सीढ़ियाँ उतरने लगी।

हठात् वह किसी से छू गयी। डर कर पूछा, "कौन"

"मैं हूँ शेर सिंह।"

हरप्यारी के होश उड़ गये। बाहर तड़ातड़ ढोलक बज रही थी।

शेर सिंह ने अँधेरे में ही उसके हाथ पकड़े। हाथों से कंडे गिर गये। हरप्यारी की चेतना लुप्त हो गयी। बाहर ढोलक बज रही थी। शेर सिंह ने लालसा भरे स्वर में कहा, "आज मेरा कलेजा ठंडा करो, हरप्यारी!,'

हरप्यारी पागलों की तरह चिल्लायी, "अम्माँ, ओ अम्माँ!" आवाज़ अँधेरे जीने में गूँज कर रह गयी। बाहर ढोलक बज रही थी। पलक मारते शेर सिंह ने हरप्यारी को अपनी बाहों में कश लिया।

'अरे छोड़ दे हत्यारे !"

शेर सिंह ने उसे अपने कलेजे से सटा लिया ।

"अम्माँ, ओ अम्माँ ! अरे, कोई बचाओ !"

किसी ने नहीं सुनी वह करुण पुकार । वाहर ढोलक वज रही थी ।

हरप्यारी ने मछली की तरह छटपटा कर दीन स्वर में कहा—छोड़ दो भैया, मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ भैया, छोड़ दो !" पर वन्धन ढीला न हुआ । वाहर ढोलक वज रही थी ।

÷ + +

गाँव वहुत वड़ा था, पाँच-छः हज़ार की आवादी रही होगी । गाँव में हर साल मथुरा की "रास-मंडली" आती थी । और महीने भर तक गाँव में रास-लीला होती रहती थी । खासतौर पर जब सेठ मेघराज के दरवाजे पर तख्त पड़ते और तख्तों पर 'तड़-तड़-धम, तड़-तड़-धम्म' करके नगाड़ा वजता और घुँघरुओं की 'छुन्न-छुन्न' होती तो वड़ी रौनक़ आती-समाँ वँध जाता ।

गली में चलना-फिरना रुक जाता और पास-पड़ोस की छतें औरतों से टूटी पड़तीं ।

और जैमन्ती को वचपन से ही रासलीला देखने का शौक था—हर साल देखती रही थी ।

सो जैमन्ती ने अम्माँ से पूछा कि वह 'रासलीला' देखने चली जाय तो अम्माँ ने कह कर मना कर दिया कि 'लीला' सेठ मेघराज के दरवाजे पर हो रही है । जैमन्ती को वहुत बुरा लगा, दुखी हो गयी और दुखी होकर खाना भी नहीं खाया । अन्त में अम्माँ ने मजवूर होकर कह दिया कि जाओ, चली जाओ ।....

....'रुक्मिणी-हरण' वाली लीला हो रही थी जैमन्ती सामने की एक छत पर वैठी वड़े ध्यान से यह लीला देख रही थी । मानो दूसरे लोक में हो वह कि सहसा पास वैठी औरत ने उसकी समाधि तोड़ दी । जैमन्ती को झकझोर कर वोली, "देखो तो, तुम्हें कोई बुला रहा है ।"

जैमन्ती ने इधर को मुँह फिराकर देखा तो दूर से कोई हाथ के इशारे से उसे उठ आने को कह रहा था। हारकर जैमन्ती उठ आयी। पास आ कर देखा, बुलाने वाली धीमरी थी पुरानी। धीमरी यहं पहले ठाकुर साहब की हवेली में काम करती थी। एक वार अम्माँ ने इसे घी चुराते देख लिया, तो निकाल दिया।

और धीमरी ने जैमन्ती के पास आते ही घबराहट से कहा—"बिटिया, घर चलो जल्दी से!"

क्यों, क्या वात है?"

"अम्माँ के पेट में वड़े ज़ोर से पीर उठी है, जल्दी चलो तुम।"

जैमन्ती को विवश हो घर चल देना पड़ा तुरन्त। जब दोनों जनीं सूनी राह में आ गयीं तो जैमन्ती ने सोचकर पूछा, "तुमसे किसने कहा? तुम गयी थीं घर?"

"हरिया आ रहा था तुम्हें बुलाने! वह हकीम जी के पास दौड़ा गया है और मुझसे तुम्हें घर पहुंचाने को कह गया नौकरी छोड़ दी है, तो क्या मेरा नाता भी टूट गया? तुम्हारा दिया ही खाते हैं बिटिया!"

जैमन्ती ने कुछ नहीं कहा फिर। उदास होकर चली जा रही थी मन में अम्माँ की चिन्ता लिये गली पूरी हो गयी और मोड आया फिर मुड़ने को हुई कि सहसा किसी ने पीछे से मुँह पर कपड़ा डाल दिया।····

····मेघराज ने ठाकुरदास को आज डटकर भंग पिलायी थी। उसकी आँखें बार-बार नगाड़े की आवाज से खुल जातीं और फिर मुँद जाती अपने आप। जब बैठना दूभर हो गया, तो मुंह घुमा कर सेठ से कहने को हुआ कि नींद आ रही है मुझे, अब जाता हूँ मैं। पर देखा तो सेठ की जगह खाली पड़ी है।

ठाकुरदास उठ कर खड़ा हो गया और लाठी ले कर चल दिया नगाड़ा बजता रहा।

भंग के नशे में झूमता ठाकुरदास, लाठी कन्धे पर रक्खे चला जा रहा था बहुत अच्छा लग रहा था- मानों हलकी-हलकी लहरें आ रही हों।

सेठ मेघराज के गाँव में कई मकान थे। एक मकान इस गली में भी था, जिससे होकर ठाकुरदास जा रहा था। मकान पर पुरानी-सी फाटक लगी थी और यह मकान प्रायः गोदाम के काम में आता था। ठाकुरदास उसी फाटक के सामने से जाने लगा तो किसी को फाटक से आगे खड़ा देखकर रुक गया। नशे में उस आदमी की शक्ल पहिचान नहीं सका, तो थोड़े अचरज से उसने पूछा—"कौन!"

"मैं हूँ उस्ताद!"

"कौन, गोविन्दी?"

"हाँ, उस्ताद!"

"यहाँ कैसे खड़े हो?"

"अरे चिड़िया आयी है। सेठ ने 'रास' में पकड़ी है! ठाकुरों की भतीजी है!"

ठाकुरदास को जैसे एकाएक गरम लोहा छू गया हो! उसने आँखें खोल दीं और गोविन्दी को धक्का देकर फाटक के भीतर हो गया।....

तिदरी में एक मद्धिम-सी लालटेन जल रही थी और अंधे-अँधेरे कोने में खड़ी जैमन्ती थर-थर काँप रही थी और नशे में आँखें सुर्ख किये मेघराज उसे छू रहा था ठाकुरदास खड़ा देखता रहा।

नशे में डूबा मेघराज बोला—"ओहो!"

थर-थर होती जैमन्ती दिवाल से सट गयी। सटती गयी—सटती गयी। ठाकुरदास देखता रहा यह आकुलता।

मेघराज ने फिर जैमन्ती को छू लिया और कुटिल हँसी हँसता बोला—"ये नखरे! ओहो!"

मेघराज और आगे बढ़ा और मुस्कुराकर उसने जैमन्ती के कंधे पर अपना हाथ रख दिया, कि ठाकुरदास ने बिजली की तरह कड़क कर कहा—"सेठ जी!"

मेघराज चौंक कर एक कदम पीछे हट गया और पलक मारते ठाकुरदास उन दोनों के बीच आ खड़ा हुआ।

जैमन्ती मानो अब तक इस दुनिया में नहीं थी—मानो आग की लपटो के

बीच थी और गूंगी होकर पास आती लपटों को देख रही थी। ठाकुरदास को सामने पाया, तो मानो होश लौटा और पागल-सी चिल्ला उठी—"ठकुरी भैया!"

मेघराज हक्का-बक्का होकर खड़ा था। ठाकुरदास ने घृणा भरी दृष्टि से उसे देख कर कहा—"धिक्कार है तुम्हें!"

मेघराज सन्न होकर खड़ा रहा।

ठाकुरदास ने लाठी जमीन पर पटक दी और प्यार से जैमन्ती के सिर पर अंचल ठीक करने लगा तो जैमन्ती रो उठी बिलख कर। ठाकुरदास ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर स्नेह से कहा, "रो मत बहिन, चल, घर, चल।" और मेघराज की ओर आग्नेय नेत्रों से ताकता बोला—"सेठ, काम तो तुमने बहुत बुरा किया है, पर मैं तुम्हें छोड़े देता हूँ। तुमसे मेरा मेल-मिलाप है सेठ, पर इससे तो नाता है।" जैमन्ती की पीठ पर हाथ रखे बोला—"बहिन है यह मेरी।"

पाप के हाथ-पैर नहीं होते हैं। इतनी देर में ही जैसे मेघराज का नशा काफ़ूर हो गया। वहीं खड़ा-खड़ा लड़खड़ाती ज़ुबान से बोला– "मुझसे गलती हो गयी ठाकुरदास, अब इज़्ज़त मेरी तुम्हारे हाथ है।"

ठाकुरदास ने सहारे से जैमन्ती को आगे बढ़ाते, चलते-चलते कहा, "मैं दोगला नहीं हूँ सेठ।"....

....ठाकुरदास जैमन्ती को साथ लिये हवेली की फाटक में घुसा। हरिया और घर के बाकी तीनों नौकर बाहर वाले तख्त पर पड़े खर्राटे ले रहे थे। आहट पाकर घर का कुत्ता भूँक उठा तो ठाकुरदास ने उसे पुचकार दिया। आँगन तक आये, तो ठाकुर साहब ने टोका फौरन। "कौन? कौन जा रहा है?"

"दादा, मैं हूँ, ठकुरी। बहिन को 'रास' दिखा कर लाया हूँ।"....

....भीतर जनानी चौखट पर पहुंचे तो जैमन्ती ठिठक कर खड़ी हो गयी और चुप रही, तो ठाकुरदास ने थोड़ा अचरज करके कहा—"अब जा, सो जा, खड़ी क्यों है यहाँ?"

तब जैमन्ती ने ठाकुरदास की बाँह पकड़ ली कसकर और कातर कंठ से पुकारा—'भैया!"

"क्या बात है वहिन, कह न मुझसे ! बोल क्या बात है ?"

जैमन्ती ने ठाकुरदास की बाँह पकड़े पकड़े काँपती वाणी से कहा—भैया, तुम्हें मेरी कसम है। यह बात किसी से कहना मत।"

नाई के लड़के ठाकुरदास का दिल भर आया भीतर से। उसने कहना चाहा कि तेरी इज्जत-आबरू के लिए-तेरी लाज के लिए तेरा यह अकिंचन भाई अपनी जान भी कुरबान कर देगा जैमन्ती ! पर उससे और कुछ कहा न गया। उसने जैमन्ती के सिर पर हाथ रख कर केवल कहा—"पगली !"

और अपनी आँखें पोंछता लौट चला अँधेरे में।

★

रावण

अपना न तो खेत था, न खेती होती थी। पड़ोसिन के यहाँ से बाजरे की चार बालियाँ माँग लाई थी।

लड़कों को बालियाँ देख कर फिर चैन न पड़ा। तीसरा पहर डूब रहा था, चूल्हा चढ़ा न था, अँगीठी सुलगा ली और बालियाँ भूनने बैठ गये दोनों। छोटा आग फूँकने पर रहा और बड़े ने बालियाँ पकड़ीं।

बाप को 'तिजारी' आती है—दो महीने से ऊपर हुआ। गाँव के हकीमजी की दवा होती है और हर तीसरे दिन जाड़ा देकर बुखार आता है।

तुलसी के रस में आधा तोला शहद डाल कर प्याली में पुड़िया घोल कर चाटने को दी। उस समय खाट पर बैठे बाप ने इधर को झाँककर देखा—बुझी हुई आग का धुँआ ऊपर आकाश को उड़ता चला जा रहा था और दोनों भाई बारी-बारी उसे फूंक रहे थे देख कर हँसी आई और दवा की प्याली हाथ में ले कर लड़कों की माँ से कहा—"देखो तो, दोनों क्या कर रहे हैं!"

माँ ने एक बार उधर देखकर दृष्टि हटा ली। हकीम जी की पुड़िया जैसे 'जहर' की है उसे चाटने के बाद बहुत जी मिचलता है, मुँह बिगड़ने लगता है।

दो बार पानी का कुल्ला करके जल्दी से चादर ओढ़कर कहा—"जाओ, बालियाँ भून दो उनकी।"

आँगन के पार आकर माँ ने दोनों के चेहरे देखे। चेहरे लाल हो रहे थे आग फूँकने से और आँखों से आँसू बह रहे थे धुँआ लग कर। दया सी लगी और पास बैठ कर बोली—"हट तो ला, मैं भून दूँ।"

दोनों लड़कों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे ओर कुर्तों की बाँहों से आँखों का पानी पोंछते पीछे को हट आये।

तब माँ ने अँगीठी में हाथ डाला और हाथ जहाँ का तहाँ रुक गया। फिर

दोनों लड़कों की ओर देखकर चिल्लाकर बोली—"नासपीटों, यह क्या कर डाला!"

अँगीठी में बाँस की पतली-पतली खपच्चें धरी सुलग रही थीं उन्हीं खपच्चों को देखकर चिल्लाकर बोली—"तुम्हारा 'नास' हो जाय, यह क्या कर डाला!"

ये बाँस की खपच्चें, जो अँगीठी में सुलग रही थीं, 'रावण की थीं। इन बाँस की खपच्चों से 'राम-लीला' का रावण' बनता था। गाँव में हर साल रामलीला होती थी। और हर साल बाप इन बाँस की खपच्चों से पचास फ़ीट ऊँची रावण की मूर्ति बनाकर खड़ी करते थे रामलीला में! एक-एक खपच्च जाने कितने श्रम से तैयार होती, फिर उसे चाकू से चिकना करते रात-रात भर लगकर, फिर उन्हें दिन-दिन भर बाँधते रहते फिर, उन खपच्चों पर रंग-बिरंगा कागज़ मढ़ते, फिर जगह-जगह सुनहली पन्नी लगाते। फिर पचास फ़ीट ऊँची रावण की मूर्ति रामलीला में ले जा कर खड़ी करते। उस मूर्ति का सिर और सिर के ऊपर छत्र-मुकुट हवा के सहारे आकाश के बीच धीरे-धीरे हिलता रहता और देखनेवाले उस सिर को यों हिलता देखकर कहते—"अरे,यह देखो, रावण कैसी शान से खड़ा सिर हिला रहा है!"

गाँव का हर आदमी, हर औरत और बालक तक जानते थे कि 'रावण' कौन बनाता है। पास-पड़ोस के और दूर-दूर के नाते-रिस्तेदार, जो रामलीला देखने आते, रावण को इस तरह आकाश के बीच सिर हिलाता देखकर भय से और अचरज से पूछते—"यह रावण किसने बनया है?" और तब चाहे कोई कह देता—"हमारे गाँव के जुम्मन यह रावण बनाया करते हैं।" और कहनेवाला यह कह कर गर्व अनुभव करता। उस समय अपना पीतल के बटनोंवाला कोट पहिने, कन्धे पर अँगोछा डाले यह रावण का बनानेवाला धीर-मन्थर गति से भगवान रामचन्द्र के सिंहासन के आस-पास टहलता रहता, चेहरे पर प्रसन्नता छाई रहती, ओठों में मुसकान छिपी रहती और आँखों में आनन्द दीखता। गाँव का गर्व करने वाला हर आदमी पास आता और इस चेहरे पर आदर की नज़र डालकर कहता—"इस बार तुमने रावण बनाने में कमाल कर दिया है!" और गाँव का गर्व करनेवाला हर आदमी दूर से अँगुली उठा कर बाहरवालों को संकेत

से बताता और आँखों में आदर भर कर कहता—"वे देखो, जुम्मन खड़े हैं उन्होंने रावण बनाया है।"....

अपराधी की तरह दोनों लड़के अपने हाथों का मैल छुटाते खड़े थे और चेहरे उतर गये थे दोनों के।

माँ ने जल्दी से वे आधी सुलगी बाँस की खपच्चें अँगीठी से खींचकर बाहर कीं और जल्दी से उन आधी जली खपच्चों पर पानी डाला।

अपने हाथों का मैल छुठाते दोनों लड़के खड़े देख रहे थे।

खपच्चें सामने बुझी पड़ी थीं और उनसे तनिक-तनिक काला धुँआ निकलकर हवा में विलीन हो रही था!

माँ ने दोनों की ओर ताक कर अपना माथा ठोंका और बोली—"हाय राम, अब मैं क्या करूँ? बाप सुनेंगे तो क्या जाने करेंगे तुम्हारा!"

दोनों लड़कों के चेहरे भय से सफ़ेद पड़ गये और ज़ोर-ज़ोर से अपने हाथों का मैल छुटाने लगे।

कि बाप ने भीतर से पुकारकर कहा—"अरे घुन्नू की माँ, ज़रा मुझे लिहाफ़ उढ़ा जाओ।"

माँ भीतर को गई और दोनों लड़कों ने एक-दूसरे की ओर देखा और दबे पैरों चल दिये। दरवाज़ा खोला हौले से और नौ-दो ग्यारह हो गये।

बाप को जाड़ा आया चढ़ था। पेट में दोनों घुटने दिये औंधे पड़े थे और देही थर-थर हो रही थी!

माँ ने लिहाफ़ उढ़ा दिया तो उसी तरह कँपकँपाते रहे और उसी हालत में हाँफते-हाँफते पूछा—"बालियाँ भून दीं उनकी?"

माँ ने दुख मना कर कहा—"बालियाँ क्या भूनती, ऐसे 'सत्यानासी' बालक हैं कि पिरान दुखी कर लिये हैं मेरे! अन्धों ने रावण वाली खपच्चें जला दीं! अभी जाकर बुझाई हैं मैंने।"

बाप ने हाँफ कर कहा—"खपच्चें जला दीं तो क्या हुआ जला लेने देतीं उन्हें।"

माँ ने दुख मना कर कहा—"इतनी मेहनत से एक-एक खपच्च बनती है, उनसे बालियाँ भून देती! इसीलिये ये खपच्चें हैं?"

बाप ने जाड़े से कँपकँपाते कहा—"और क्या होगा उनका ?"

"रावण काहे का बनेगा फिर ?"

बाप ने हाँफ कर पूछा—"रावण कौन बनायेगा ?"

माँ ने इस का जबाब न दिया।

बाप ने पेट में दोनो घुटनों को और जोर से सटा लिया। सारी देह जाड़े से थर-थर हो रही थी। हाँफ कर कहा लिफ़ाफ़ के भीतर से—"अब कौन रावण बनायेगा ! मैं किसी तरह नहीं बचूंगा—"

तब शीघ्रता से पायते बैठकर लिहाफ़ के उपर से दोनों हाथों से कसकर स्वामी के काँपते पैर पकड़ लिये और रोकर बोली —"ऐसी बातें मत कहो—

पूरी पाँच सालें हो चुकीं—पाँच सालों से गाँव की रामलीला बन्द है, सारे ज़िले की रामलीला बन्द है। शहर में हिन्दू और मुसलमान में लड़ाई हो गई थी उस साल। तभी से सरकार ने रामलीला बन्द करवा दी सारे ज़िले भर की।

अब इस साल हुकुम मिला था। पाँच साल के बाद आज फिर दशहरा की 'उगाई' हो रही थी। इस साल बहुत जोर-शोर से रामलीला होगी। रामलीला-कमेटी बन गई थी और गाँव के लम्बरदार कोमिल जोशी को साथ लिये दूकान दूकान, मुहल्ले-मुहल्ले और घर-घर चन्दा वसूल कर रहे थे रामलीला का।

आगे-आगे गेरुआ झंडा लिये लड़कों का झुंड था और उसके पीछे ढोलवाला ढोल पीटता चलता था।

दोनों लड़के उसी झुंड में शामिल हो गये और राह में ईंट पत्थरों से ठोकर खाते, पैरों से धूल उड़ाते चल दिये झंडे के साथ।

भगवन्ता के हाथ में झंडा था वह सब संगी लड़कोंपर शान गाँठता चलता था, साथ दौड़नेवाले सब लड़कों से कहता चलता था—"पीछे रहो—पीछे रहो !"

ये दोनों भी सब से कन्धा भिड़ाये दौड़ रहे थे और अक्सर लपक कर झंडे के पास पहुँच जाते, तो भगवन्ता डाँट कर कह देता—"अबे पीछे-पीछे रहो" और सहम कर एक क़दम पीछे हट जाते दोनों।

सहसा ढोल की 'भड़-भड़' बन्द हो गयी और कोमिल जोशी ने पीछे से पुकार लगाई—"अरे ओ भगवन्ता, रुक जा।"

भगवन्ता राह के एक किनारे हो गया। इतनी देर तक झंडा थामे-थामे बाँस

उठाये-उठाये थक गया था; हाथ पिराने लगे थे। झंडा तो दीवाल से टेक दिया और कमर की धोती कसकर सामने की दूकान पर जा खड़ा हुआ।

रामदीन लाला खाँड़ के बताशे तोड़ रहे थे परछा खट्-खट् बोलता था और नीचे कपड़े पर किनारी-किनारी कतार से बतासे गिरते जाते थे। भगवन्ता थोड़ी देर खड़ा देखता रहा, फिर लाला की तरह एक हाथ ऊपर और एक हाथ नीचे करके मुँह से बोला—"खट्-खट्, खट्-खट्" और उसके रूपहीन बताशे नीचे गिरने लगे। लाला का स्वभाव सब जानते हैं, सब मजाक कर लेते हैं लाला ने एक बार उसकी ओर देखा और उसी तरह खट्-खट् करके परछा चलाते रहे। भगवन्ता को बड़ा मजा आया। वह और तेजी से अदृश्य में अपने हाथ चला कर मुँह से करने लगा—"खट्-खट्-खट् खट् औ खट्-खट् खट् खट्!"

कि दो लड़के उसके आगे आ कर बोले—"देखो, वे झंडा उठा रहे हैं!" सब लड़के झंडे को चारो ओर से घेरे खड़े थे। ये दोनों तो बिलकुल पास थे झंडे के जब रहा नहीं गया तो बड़े घुन्नू ने झंडे का डंडा को छू कर देखा, फिर धीरे से उसे ऊपर उठाया। हवा में लहराती गेरुआ ध्वजा कैसी सुन्दर लगती है!

बड़ा भाई झंडा ऊपर रोके था और छोटा भाई सतृष्ण आँखों से आकाश में उड़ती ध्वजा को निहार रहा था ऊपर को मुंह किये।

कि भगवन्ता दौड़ा आया और ताकत से घुन्नू की खोपड़ी पर एक धौल लगा कर बोला—"अबे रख, झंडा नीचे रख!"

धौला खाकर खोपड़ी झन्ना गयी थी। झंडा चुपचाप टेंक दिया और सिर पर हाथ फिराने लगा।

पर भगवन्ता को सन्तोष न हुआ। दोनों भाईयों की एक-एक बाँह पकड़ी और सामने खड़े लड़कों पर ढकेल दिया। छोटा भाई गिरते-गिरते बचा और कातर दृष्टि से इधर देखने लगा तो सिर तान कर हाथ उठा कर कहा—"खबरदार, आगे मत बढ़ना! तुम मुसलमान हो, झंडे के पास आये तो लात मार दूंगा छाती पर!"

कोमिल जोशी आ गये उधर से। भगवन्ता कमर कसकर बोला—"ताऊ झंडा उठायें?"

कोमिल जोसी ने कहा—"अभी नहीं, लम्बरदार जुम्मन के यहाँ गये हैं।"

इन्होंने न सुना। भीड़ से अलग होकर चुप-चुप खड़े थे उदास और झंडे के उठने की प्रतीक्षा में थे।

पड़ोसी का लड़का सोहन लाल दौड़ा आया और घुन्नू का कन्धा पकड़ कर बोला—"लम्बरदार तुम्हारे घर गये हैं। चलो, उन से कह दो, भगवन्तू ने हमें मारा है—

÷ ÷ ÷

यहाँ, चौखट के पार लम्बरदार से बात करते बाप खड़े मिले चादर ओढ़े। क्या बातें हो रही हैं ? दोनों किवाड़ के पास रुक कर सुनने लगे।

माँ किवाड़ों के पीछे आड़ में खड़ी थी। उस ने दोनों को धीरे से भीतर खींच लिया और दोनों के सिर पर हाथ फिरा कर ममता में डूब कर बोली—"कहाँ थे दोनों ?"

घुन्नू ने प्रसन्नता से कहा—"झंडा निकल रहा है न, उसी के संग थे।"

माँ ने सरलता से पूछा—"निकल गया झंडा ?"

घुन्नू बोला—"अब लम्बरदार जायेंगे तो आगे बढ़ेगा, अभी रुके हैं सब।"

छोटा भाई मुन्नू लम्बरदार की याद करके बोला—"अम्माँ, भगवन्तू ने अभी भैया को—" तो बड़े ने फ़ौरन आँख के इशारे से रोक दिया। पर माँ ने ध्यान न दिया। किवाड़ों से सटी, कान लगाये खड़ी थीं बातों पर।....

घड़ी पीछे बाप भीतर लौटे और धम्म से खटिया पर गिर पड़े। बुखार की तेजी से हाँफ रहे थे और आँखें लाल थीं, माथा फटा जा रहा था और कनपुटी पर खट्-खट् करके रक्त बज रहा था।

पलक दे दिले और सुन्न हो कर पड़ रहे।

दोनों लड़के स्तब्ध हो कर पाटी के पास खड़े बाप का मुंह ताक रहे थे। और माँ विषाद में डूबी, उस मुँह पर झुक कर पूछने लगी—"बहुत पीर हो रही है ? माथा दबा दूँ ?"

क्षण भर जैसे कुछ नहीं सुना, फिर ज्वर से आरक्त आँखें खोल कर सामने खड़े मुन्नू को देखा और बाँह पकड़ कर अपने पास खींच लिया और उस की कोमल शीतल हथेली अपने जलते माथे पर रख ली।

घुन्नू चुप खड़ा था। उस की ओर देखकर बोले—"तू भी आ जा बेटा !"

और दोनों बेटों को छाती की गरम हड्डियों से सटा कर थोड़ी देर पड़े रहे। फिर मानो शान्ति पा कर बोली—"धन्नू की माँ; लम्बदार की बाते सुनीं तुम ने ?"

उदास खड़ी थीं सिर के पास, धीरे बोली—"सुन तो रही थी।"

बोले—"इधर आओ, सामने।" और सामने करके बोले—"रावण बनाओगी फिर !"

उदास हो कर बोलीं—"ऐसा तो हाल हो रहा है, खाट से उठ नहीं पाते हो, कैसे भला रावण बनेगा !"

बोले—"कोमिल कल शहर जायेंगे; मेरे लिये 'कुनैन' लेने ही जायेंगे। कहते थे, फिर 'तिजारी' न आयेगी हरगिज़।"

उदास होकर बोलीं—"यह तिजारी छूट जाय, मैं 'मनौती' मनाऊँगी, 'देवी' पर झण्डी चढ़ाऊँगी और 'पीरजी' पै चद्दर चढ़ाऊँगी।"

बोले—"ज़रा 'बल' आ जाय, तो फिर दो दिन में रावण बना दूँ।"

बोली—"अम्माँ की 'झूमड़' कब की 'गिरो' पड़ी है, आखिरी निशानी है। सोचा था, इन रावणवाले रुपयों से छुड़ा लूँगी; साल भर में और तो कोई बँधी आमदनी नहीं है।"

बोले—"आमदनी की बात जाने दो। मुझे तो गाँव की इज़्ज़त का ख्याल है। तुम ने सुना नहीं ? लम्बरदार कह रहे थे, अफ़सर लोग शिवपुर में डेरा डाले पड़े हैं, 'बन्दोबस्त' हो रहा है; वे लोग इस साल रामलीला में आयेंगे—रावण देखेंगे। पाँच साल के बाद हमारे गाँव में रामलीला हो रही है।"

मुन्नू तब से बाप की गरम छाती पर सिर धरे लेटा था। चौंककर पूछने लगा—"कलक्टर साहब रावण देखने आयेंगे ! एँ बप्पा ?"

बाप ने उस का सिर छाती में दबाकर कहा—"हाँ बेटा, इस साल बहुत बढ़िया रावण बनाओ, गाँव की शान रह जाय।"

माँ ने कहा—"इस घुन्नुआ के अब थप्पड़ मारो तुम, आज इस हत्यारे ने सब खपच्चें जला के रख दीं !"

धुन्नू कातर हो कर बाप की ओर देख रहा। पर बाप नाराज न हुये। उसके सिर पर हाथ फिरा कर दुलार से बोले—"नासमझ है. समझता नहीं है।" फिर कष्ट से आँखें मूँद कर बोले—"मुझे बचपन की याद है, अब्बा तब रावण बनाया करते थे। मैंने जाने कितनी बार रंगीन कागज चुरा कर झंडियाँ बना डाली थीं अब्बा कभी नाराज़ न हुये।" फिर दोनों लड़कों को छाती में कस कर एक साँस खींच कर बोले—"मेरे बाद ये दोनों ही रावण बनाया करेंगे। मैं अकेला था, सब ज़िन्दगी भर ग़रीबी घेरे रही—रावण के रुपये लेता रहा। ये दो हैं, बहुतेरा कमायेंगे, पढ़-लिख कर 'आदमी' बनेगें। इन से कह जाऊँगा—रावण के रुपये मत लेना रामलीला की कमेटी से। यों ही हर साल रावण बनाना—अपने बाप-दादों का 'नाम' रखना और गाँव की शान रखना हमेशा।" कहते-कहते आँखों में पानी भर आया। आँखों से वह 'पानी' बहने दिया और आँखें मूँदे रहे कलेजे की हड्डियों से बेटों को सटाये!

÷ ÷ ÷

कोठे की दीवाल फोड़कर रास्ते की ओर एक खिड़की लगा ली थी। उसीं खिड़की के किनारे 'बिसातखाने' की छोटी-सी दूकान रखते थे। दूकान में बिसातखाने की दो-चार चीज़ें रहतीं, बाक़ी मदरसा के लड़कों के लिये पेंसिल, दावातें और स्याही की पुड़ियाँ बेंचते, लड़कियों की 'क्रोशियाँ' और सूत के पिंडे बेंचते, बच्चों के खिलौने बेंचते।....

धुन्नू-मुन्नू दूकान पर बैंठे बिक्री कर रहे थे। बड़ा आनन्द आ रहा था। बाप वाली गद्दी पर बड़ी शान से बैंठे थे और पैसोंवाली सन्दूक़ची सामने रख ली थी। सुबह से अब तक कुल दो पैसे की बिक्री हुई थी। उन दोनों पैसों को सन्दूक़ची में डाल दिया था और बार-बार उसे हिला कर देख लेते थे कि पैंसे हैं तो।

कि हुरिया काना आया। एक आँख से दूकान की हर चीज़ को देखकर पूछने लगा—"यह गेंद कितने की है?"

मुन्नू ने जल्दी से कहा—"चार पैंसे की।",

धुन्नू ने कहा—"नहीं, चार की नहीं, पाँच पैसे की है।"

मुन्नू बोला—"वाह बप्पा तो शहर से चार पैंसे में लाये हैं!"

हुरिया काना एक आँख से दोनों भाइयों को देख कर बोला—"हम से बेई-मानी कर रहे हो! लो, चार पैसे लो।"

धुन्नू ने कहा—"अच्छा, रुक जाओ। हम बप्पा से पूछ आते हैं।"

घुन्नू भीतर दौड़ा गया। हुरिया काना मुन्नू से बोला—"मुन्नू, उल्लू देखोगे?"

मुन्नू ने पूछा—"कहाँ है उल्लू?"

हुरिया काना बोला—"वह देखो, सामने के पीपल पर बैठा है, उधर!"

मुन्नू उचक कर उल्लू देखने लगा कि पलक मारते हुरिया काने ने लपक कर गेंद उठा ली और उड़न-छूँ हो गया सड़ाक् से।

दोनों लड़कों ने बड़े दुख से यह समाचार माँ-बाप के आगे सुनाया।

घर में रावण बन रहा था। माँ-बाप लगे थे, खपच्चें बन रही थीं। माँ ने नाराज हो कर कहा—"लगे दोनों के दोनों मिट्टी के महादेव हैं! एक काम के नहीं! बैठे देखते रहे और गेंद चुरवा दी एक आने की!"

बाप ने माथे पै बल डालकर कहा—"तुम से किसने कहा था दूकान खोलने को? ऐसी क्या मारी जाती थी दूकान के बिना?"

माँ ने खिन्न हो कर कहा—"जो दो चार पैसे आ जाते थे सो भी बन्द! मुझे क्या है, रहने दो, मत खोलो दूकान।"

बाप ने सिर झुकाकर काम में ध्यान दिया और धीरे से बोले—"हाँ, रहने दो, अभी रावण बनने तक दूकान न खुलेगी—चाहे कितना हर्जा हो।"

फिर लड़कों की ओर देखकर बोले—"आओ, दूकान बन्द कर आओ और हमारे साथ काम करो; रावण बनाओ।"

लड़कों ने खिड़की की किवाड़ें दे दीं—दूकान बन्द हो गयी। बहुत प्रसन्नता से पास आ बैठे और प्रार्थी के स्वर में बप्पा से पूछने लगे—"क्या करें?"

बप्पा ने सोच कर कहा—तुम—तुम दोनों ये खपच्चें छाँट-छाँट कर रखते जाओ। लो, ये छोटी-छोटी एक ओर रक्खो, ये हाथों की हैं।"

लड़के काम में लग गये। पर माँ ने उनकी ओर देखा तक नहीं। सिर डाले चुपचाप अपना काम किये जा रही थी—बाँस से खपच्चें काट रही थीं।

सहसा उसे याद आया और हाथ रोक कर बोली—"तुम्हारी दवा वक़्त हो गया, दवा ले आऊँ ?"

बाप ने हाथ न रोके, बोले—"अभी मत उठो, यह बाँस पूरा कर लो।"

फिर कोई कुछ न बोला। चारो प्राणी एकाग्रभाव से अपने-अपने काम में लीन थे। केवल बाप बीच-बीच में एक साँस खींचकर दीवाल से क्षण भर को टिक जाते थे और फिर उन का चाक़ू 'सर्र-सर्र' करके चलने लगता था।....

धीरे-धीरे साँझ डूबी। फिर सूरज की आखिरी किरणें भी पेड़ों से उतरने लगीं। पर न बाप को सुधि थी और न लड़कों को। माँ से और सह्य न हुआ। चलते-चलते उसके हाथ एकाएक रुक गये और रुँआसी-सी होकर बोली—"अब उठोगे नहीं ?"

बाप ने मानो याद करके कहा—"हाँ-हाँ, तुम उठो न, रोटी बनाओ, ये दोनों भूखे होंगे।"

माँ ने कहा—"और तुम ?"

बोले—"बस- ये चार खपच्चें और हैं इन्हें पूरा कर लूँ।"

तभी बाहर राह में भड़-भड़ करके ढोल बज उठा। दोनों लड़कों के कान खड़े हो गये और आँखें चमका कर बोले—"अरे, काला झंडा जा रहा है! रावण का!" और पलक मारते भाग खड़े हुये बाहर को।....

घर में अँधेरा घुस आया। चूल्हे के आगे बैठी देखती रही—देखती रही कि अब उठें अब उठें। पर उन्हें तो जैसे होश ही न था, काम में डूबे थे और डूबे थे।

जब रहा नहीं गया तो आगे आकर विनती करके कहा—"तुम्हारे हाथ जोड़ूँ अब रहने दो। इतनी कमजोरी है आज बुखार नहीं आया है, सरदी में बैठे रहोगे तो कल ही फिर बुखार बुला लोगे!

तो फौरन काम रोक दिया और हँसकर कर बोले—"लो, बन्द कर दिया काम। अब ख़ुश!"....

इस तरह यह एक दिन बीत गया और सितारोंजड़ी काली चादर दुनिया पर छा गयी। लड़के खा-पी कर सो रहे। पर बाप की आँखों में नींद न उतरी। जागते लेटे थे और अँधेरे में पलक खोले थे। यह, इधर को तीसरी खटिया थी।

पुकार कर बोले—"धुन्नू की माँ, सो गईं क्या ?"

अभी-अभी झपकी आई थी, चौंक कर कहा—"नहीं तो, क्यों ? प्यास लगी है क्या ?"

बोले—"नहीं, प्यास नहीं लगी है। मैं यह सोच रहा हूँ कि इतने दिनों में रावण बन सकेगा मुझ से ?"

"क्यों ! बनेगा क्यों नहीं ? अभी तो आठ रोज़ हैं।"

बोले—"हाँ, आठ रोज़ हैं। धुन्नू की माँ, कल से खूब मेहनत करो। कलक्टर साहब रामलीला में आयेंगे—रावण देखेंगे, गाँव की इज़्ज़त रखनी है। अगर रावण तैयार न हो सका तो फिर लम्बरदार को कैसे मूँह दिखाऊँगा ! धुन्नू की माँ, रावण नहीं बना तो मैं फाँसी खा कर मर जाऊँगा !"

चमक कर अँधेरे में उठ बैठी और कातर वाणी में बोली—"कैसी बुरी बात मुँह से निकाल रहे हो ! मैं तो हूँ, तुम इतना क्यों घबरा रहे हो ? रावण काहे को न बनेगा, मैं अपनी जान लड़ा दूँगी !"

एक गहरी साँस खींच कर बोले—"हाँ धुन्नू की माँ, मैं तुम्हारे मुँह से यही सुनना चाहता था। अब सो रहो। बहुत रात हो गई है क्या"

आँसू भरे कण्ठ से कहा—"हाँ, आधी रात बीत गई है।"

÷ ÷ ÷

दूसरे दिन कोमिल जोषी आये और पाँच रुपये का एक नोट देकर बोले—"ये कागज़ और पन्नी के लिये भेजे हैं लम्बरदार ने। अब तुम अपनी मर्ज़ी से मँगा लो जैसा कागज़ चाहो। और भैया, यह समझ लो कि बस तुम्हें गाँव की इज्ज़त रखनी है—साहब लोग रामेलीला देखने आयेंगे, पाँच साल के बाद अपने गाँव में रामलीला हो रही है। खूब मन लगाकर रावण बनाओ कि देखनेवाले भी कहें कि इस गाँव में कैसे-कैसे 'कारीगर' आदमी बसते हैं। ऐसा रावण बने इस साल कि बस कमाल हो जाय ! शहर में भी रामलीला हो रही है इस साल। मैं उनका रावण देख आया हूँ, अभी से बनाकर खड़ा कर दिया है, तुम से क्या बताऊँ, बिलकुल कूड़ा-करकट ! मैंने वकील साहब से कहा—हमारे गाँव में अब आप आकर देखिये, हमारे गाँव का रावण देखिये तो आँखें खुल जाँय ! बोले—

तुम्हारे गाँव की रामलीला तो भाई यों ही मशहूर है, रावण भी बढ़िया बनता होगा। अच्छा, इस साल देखने आयेंगे। तुम्हारे यहाँ कौन बनाता है रावण? तो मैंने कहा—हमारे जुम्मन भैया बनाते हैं। बोले—क्या मुसलमान? हमने कहा—साहब, यह शहर नहीं, गाँव है! रामलीला गाँव की है—हिन्दू-मुसलमान की नहीं सब की इज्ज़त है, सब की 'आन' है। मुँह देखने लगे मेरा!"

जुम्मन का दिल भर आया; आँखों में पानी भर आया, बोला नहीं गया।

कोमिल जोषी बोले—"लो थामो, ये रुपये लो, इनके कागज़-फागज मँगा लेना और जो कुछ पड़े अपने पास से डाल देना, पीछे हिसाब हो जायेगा सब। लो!" यह कह कर नोट देने लगे हाथ में।

पर जुम्मन ने हाथ न बढ़ाया। दिल भरा था, आँखें भरी थीं, गला भरा था। उसी भरे गले मे बोले—"रुपये रख लो अपने पास।"

कोमिल जोषी ने अचरज से पूछा—"क्यों?"

दिल भरा था, आँखें भरी थीं, गला भरा था। उसी भरे गले से बोले—"इस बार मैं रुपये न लूँगा। ग़रीब हूँ, और तो कुछ दे नही पाऊँगा रामलीला में मेरी ओर से यही समझ लेना सब। पाँच साल के बाद गाँव में रामलीला हो रही है, साहब लोग देखने आयेंगे, मैं रावण बनाऊँगा। इस बार जी-जान लगा दूँगा—गाँव की इज्ज़त रखनी है।"

कोमिल जोषी ने कहा—',जुम्मन भैया, तुम ग़रीब हो! कैसे तुम अपने लिये ग़रीब कहते हो, तुम्हारा जैसा दिल तो बड़े-बड़े अमीरों का न होगा। चन्दा देने वाले तो बहुत हैं लेकिन तुम तो वह चीज़ दोगे जो हज़ारों रुपयों की है—तुम्हारे जैसा रावण दूर-दूर तक कोई नहीं बनाता, तुम से रामलीला की शान है,—गाँव की इज्ज़त है। लेकिन रुपये तुम ये मत लौटाओ, मेरा कहना मानो, रुपये ले लो। तुम कहाँ तक अपने पास से खर्च करोगे!

कुर्ते से आँखें पोंछ कर कहा—"नहीं कोमिल भैया, इस बार मुझे यों ही रावण बनाने दो; मजबूर न करो। रुपये मैं हरगिज़ न लूंगा—तुम चाहे कुछ भी करो—मैं रुपये नहीं लूगा।"

विवश हो कर कोमिल जोषी उठ गये।....

कोठे के भीतर से सब सुनाई दे रहा था। सब सुन लिया था। तो भी पास आ कर पूछा—"क्या कह रहे थे कोमिल?"

चेहरे पर उल्लास खिला था। तनिक मुसकरा के कहा—"रुपये देने आये थे। लम्बरदार ने कागज़ों के लिये रुपये भेजे थे—"

कुछ नहीं बोली।

हँसकर खुद ही सुनाया—"सो मैंने तो लौटा दिये रुपये—"

कुछ नहीं बोली।

खुद ही कहा—"इस साल रुपये न लूंगा—"

कुछ नहीं बोली।

खुद ही पूछा—"तुम 'चुप' क्यों हो? क्या मैंने गलती की है? सच कहो, घुन्नू की माँ, तुम नाराज़ हो?"

तो धीरे से कहा सिर झुकाकर—"नाराज़ काहे को होती—"

साँस खींचकर बोले—"ऐसी ग़रीबी है, तो भी मैंने रुपये न लिये। पर दिल न माना, घुन्नू की माँ, गाँव में पाँच साल बाद रामलीला हो रही है—सभी ने चन्दा दिया है और मैं उल्टे रुपये ले लेता! कैसे रुपये ले लेता! जैसे भी हो, अपने पास से रावण का खर्चा करूँगा। कहीं से 'उधार' लूंगा—चार आना 'सूद' पर त्मे पुजारी भी दे देंगे जितना चाहो।"

कि दोनों लड़के हाँफते हुये आ पहुँचे और माँ-बाप की ओर देख कर बोले—"बुढ़िया के बार लेंगे, एक पैसा दो हमें।"

बुढ़िया के बार—यानी चीनी के लच्छे।

माँ-बाप में से एक ने भी कुछ न कहा—एक पैसा न दिया।

फिर चिल्ला कर कहा—"बप्पा, एक पैसा दो!"

बप्पा ने कहा—"बैठ जाओ।"

तो दोनों जहाँ के तहाँ बैठ गये। बप्पा ने दोनों की ओर अँगुली उठा कर कहा—"देखो, हमारे साथ काम करो तो पैसा मिलेगा। दो-दो पैसे मिलेंगे। अच्छा, लाओ, बाँस तो निकालो भीतर से। रावण बनाओ।"

दोनों लड़के रावण बनाने में लग गये शान्तभाव से।

दिन भर खपच्चें तैयार हुईं। शाम हुई तो अचानक बाप के हाथ काँपने लगे। जाड़ा आ गया क्या? लड़के से बोले—"बेटा, बंडी तो उठा लाओ हमारी।"

माँ ने चौंक कर कहा—"जाड़ा आ गया क्या ?"

बोले—"नहीं, यों ही सरदी लग रही है।"

बोली—"दवा पियोगे ! ले आऊँ !"

बोले—"अभी दवा रहने दो। लौट कर पी लूँगा पुजारी के पास जा रहा हूँ। कल लछमन शहर जायेंगे—कागज़ मँगाना है। जल्दी।"

धुन्नू ने बंडी ला दी। बंडी बाँहों में डाली और साँस खींच कर काँपते पैरों से उठ खड़े हुये, दीवाल का सहारा ले कर।

तो माँ टोंक कर बोली—"पुजारी के यहाँ मत जाओ।"

दीवाल से हाथ टेंक कर बोले—"और कौन उधार देगा मुझे ?"

सिर झुका कर बोली—"मत लाओ उधार।"

"तब फिर कैसे काम चलेगा ?"

बोली—"चल जायगा काम। मैंने इन्तज़ाम कर लिया है।"

खड़े थे। घुटनो पर हाथ रख कर बैठ गये और अचरज में डूब कर बोले—"क्या इन्तज़ाम किया है तुमने ?"

सिर झुकाकर बोली हौले से—"पड़ोसिन ने दे दिये हैं दस रुपये। कानों की वालियाँ गिरो कर दीं।"

स्तब्ध रहे घड़ी भर फिर एक ठंठी साँस ले कर बोले—"वालियों को छोड़ कर और तुम्हारे पास था क्या, वालियाँ भी 'गिरो कर दीं ! जाने कब तक मुझे छुड़ा मिलेंगी, तब तक कान तुम्हारे सूने रहेंगे। काहे को तुम ने वालियाँ 'गिरो' कर दीं !"

सिर नमा कर हौले से कहा—"वालियाँ न पहिनूँगी तो कौन-सा हर्जा हो जायगा। राम चाहेंगे तो कभी छूट भी आयेंगीं। अभी तो हमें रावण बनाना है किसी तरह।"

सिर झुका कर बोले गम्भीरभाव से—"धुन्नू की माँ, मुझ-सा अभागा दुनिया में कौन होगा, कभी तुम्हें एक जेवर नहीं बनवा सका, कभी अच्छे कपड़े नहीं पहिना सका और एक-एक करके तुम्हारे नैहर के गहने भी खतम कर दिये मैंने। बड़ी ग़लती हुई, मैंने नाहक़ ही काग़ज़ों के रुपये लौटा दिये। ग़रीब आदमी की

भला औक़ात ही कितनी, जब कंगाली भाग में लिखी हो तो फिर 'दरियादिली' और दान पुन्य कैसा !"

करुण आँखों से उदास चेहरे की ओर देख कर बोली—',ज़ेवर ले कर क्या करूँगी, तुम भले रहो, लड़के किसी दिन क़ाबिल होंगे तो बहुतेरा ज़ेवर बनवा देंगे। तुम ऐसी भटकी-भटकी बातें क्यों कर रहे हो ? रुपये लौटा दिये अच्छा ही किया। ग़रीबी रहे, कंगाली रहे—तुम्हें दुनिया 'दरियादिल' कहती है, 'दरियादिली' न छोड़ो, दिल छोटा न करो—मैं तो यहीं चाहती हूँ।"

आकाश की ओर देख कर बोले—धुन्नू की माँ, दूसरे का दुख-दर्द कौन देखता है ! तिस पर ग़रीब आदमी की ओर तो कोई आँख भी नहीं उठाता कि कैसे इसके दिन बीत रहे हैं। चोट करनेवाले लाखों हैं, मरहम लगानेवाला कोई नहीं। अब्बा ज़िन्दा थे तो कभी मुझे तिनका नहीं उठाने दिया, चिन्ता न छूने दी, वे चले गये उसी दिन से सिर पर जैसे पहाड़ आ धरा। ज़िन्दगी का बोझ उठाये-उठाये मारा-मारा फिरा। सच कहता हूँ, मुझ से यह बोझ सँभाले न सँभलता, अकेला होता तो शायद किसी दिन ज़हर खा कर सो रहता। पर इन बालकों की ममता ने न मरने दिया और तुमने मुझे सदा उबारा—तुम न होती तुम्हारा साथ न होता तो मैं क्या अब तक दुनिया में होता !"

फल-फल करके आँखों से आँसू बह चले। और आँसू बिना पोंछे बोली कातर वाणी में—'तुम्हें क्या हो गया है, ऐसी बातें क्यों कर रहे हो, मेरा कलेजा निकला आ रहा है तुम्हारे पैरों पड़ूँ, ऐसी बातें न कहो !"

× × ×

लड़ाई के कारण, कागज़ के दाम बहुत बढ़ गये। दो पैसे का कागज़ आठ पैसे में आया। चार रुपये लछमन को दिये थे, ज़रा सा कागज़ों का बण्डल ला दिया। तब हारकर दूसरे रोज़ दो रुपये और दिये उसे और कागज़ों के नमूने दे आये और तन-बदन का होश खोकर दोनों स्त्री-पुरुष लगे रहे रावण बनाने में।....

कब दिन निकलता और कब साँझ डूबती, देखने की फ़ुरसत न रही। रोटी पकाने में देर लगती; दोनों जून पीतल की पतीली में खिचड़ी डाल देती और लड़के चूल्हे के आगे बैठ कर आग धौंपते रहते। वहीं कच्ची-पक्की खिचड़ी पेट में डाल लेते और तन-बदन का होश खोकर रावण बनाते रहते।....

उदासीभरी सन्ध्या आती और सामने के पेड़ों के पत्ते हिलते-हिलते रुक जाते। पूरब की ओर से धुँधियाला घिरता आता और पच्छिम का आसमान लाल होकर काला होने लगता। वड़ के पेड़ पर काऊँ-काऊँ करते सैकड़ों पंछी 'बसेरा' आ लेते तो दोनों लड़के रामलीला से थके-माँदे लौटते और सो रहते।

तब अन्धकार की ओर देख कर बाप कहते—"धुन्नू की माँ, अब तुम रहने दो, हाथ थक गये होंगे तुम्हारे। जाओ, आराम करो।"

और माँ जल्दी-जल्दी हाथ चलाती कहती—"नहीं, मैं तो तनिक भी नहीं थकी हूँ। तुम रहने दो. अब कहीं बुखार न आ जाये तुम्हें। तुम अब लेट रहो। लेटे लेटे मुझे बतलाते जाओ, मैं करती रहूँगी।"

और इसी तरह एक-एक घंटा उतरता जाता और बाहर 'गरियारे' में कुत्ते भुँकने लगते। रात का सन्नाटा बढ़ता जाता, चुप्पी छाती जाती गाँव के ऊपर।....

और इसी तरह चारो-पाँचों दिन कटे इसी तपस्या और अध्यवसाय के बीच काम की बेहोशी में जैसे पता तक न चला और होते-होते 'दशहरा' आ पहुँचा।....

सब तैयार हो गया। उस दिन दो पहर रात बीते जुम्मन ने सन्तोप की साँस खींची और आखें मुँद कर वहीं ज़मीन पर लेट गये बेसुध-से हो कर।

देख कर घबरा गई और घबरा कर पूछने लगी—"क्या हुआ? क्या बुखार आ गया तुम्हें?" और माथे पर हाथ रख देखा जल्दी से।

जुम्मन ने हाथ वहीं माथे पर रोक लिया और नयन मूँदे ही कहा—"धुन्नू की माँ, अब कलेजा ठंढा है मेरा। काम कर लिया सब, अब डर नहीं है आज सुख की नींद सोओ।"

उसे भी जैसे ठंडक पड़ी, बोली—"हाँ, अब तो सब हो गया। सिर्फ़ बाँध देना है अब तो ले जा कर।"

बोले—"यह मेरा काम है। तुम अब आराम लो। बहुत मेहनत पड़ी तुम पै—बहुत काम लिया मैंने तुम से। हाथ पिराने लगे होंगे!"

सुख में डूब कर कहा—"मेरे हाथ पिराने लगे, मैं ऐसी नाजुक हूँ और तुम? ऐसी बीमारी की देही, इतनी कमज़ोरी और सुध बिसारे लगे रहे रात-दिन। इस मेहनत को कोई देखनेवाला है गाँव में!"

आँखें खोल दीं, उठ बैठे साँस खींच कर और बोले—"और कोई देखे चाहे न देखे, जो सब कुछ देखनेवाला है वह तो देख रहा होगा। मैंने अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया—इस गाँव में पैदा हुआ हूँ, इस धूल में पला हूँ, इस गाँव की इज्जत के लिये मेरी जान चली जाय, परवाह नहीं है!"

बात बदल कर बोली—"वहाँ, रामलीला में कैसे अकेले सब कर पाओगे? न हो, एक आदमी और कर लो कोई।"

साँस खींच कर बोले—"सब कर लूँगा। मैंने आज तक कभी रावण बनाने में किसी का सहारा न लिया—"इस बार भी न लूँगा। और अब रहा ही क्या है, बस, जा कर सब बाँध देना है। कल सुबह से ही लग्गा लगा दूँगा।"

× × ×

हाथ दोनों तैयार थे और दोनों पैर भी मढ़ दिये थे। सिर आँगन में धरा चमचमा रहा था। इन सब को अब यथास्थान लगा कर 'पेट' भर मढ़ देना है।....

दोनों लड़कों ने घी-नमक से वासी रोटी खाई। बाप ने गुड़ की एक डली मुंह में डाल कर पानी पी लिया और उत्साह से भरे तीनों जने उठ कर खड़े हुये।

उस समय लड़कों को हिदायत दी अँगुली उठा कर दोनों से कहा—"बहुत होशियारी से चलो। देखो, कहीं गिरा मत देना!"

दोनों सीना तान कर बोले—"हम नहीं गिरायेंगे।"

राह में बच कर चलना, तोड़-फोड़ मत देना!"

सीना तान कर बोले—"हम तोड़ेंगे नहीं, देख लेना।"

माँ ने सहारा दिया और दोनों लड़के कन्धा लगा कर रावण की एक बाँह उठा ले चले खुशी-खुशी।

...."रावण की लम्बी बाँह कन्धे पर उठाये दोनों भाई जब गाँव के बीच से होकर गुजरने लगे तो हर किसी की नज़र पड़ी उस रंगीन बाँह पर जिसकी किनारी पर 'पन्नी' झनझना रही थी और कागज़ हवा से फरफराता था। टोले-मुहल्ले के लड़के, जो राह में खड़े मिले, पीछे हो लिये और तेज़ क़दमों से उनके साथ-साथ चलते हुए बहुत ही शाइस्तगी से कहने लगे—"तुम थक गये हो तो हम ले चलें यह बाँह; हमारे कन्धे पर रख दो।"

और दोनों भाइयों ने सिर घुमा-घुमा कर उन सबसे कहा—"नहीं, तुम रहने दो, हम क्यों थकते ! अभी तो हमें दूसरी बाँह लानी है—पैर लाने हैं !"

और सब टोले-मुहल्ले के लड़के उसी तरह उन के साथ, तेज़ क़दमों से दौड़ते, दायें-बायें चलते गये रावण की बाँह देखते ।

और इसी तरह गाँव पार किया और रामलीला के सूने मैदान में दोनों भाइयों ने रावण की लम्बी बाँह ला धरी ।

....उस समय, जाने कहाँ से, आसमान में बादलों के टुकड़े उड़ते आये और सूरज को घेर लिया उन्होंने । किरणें जो उगी थीं बादलों के टुकड़ों ने छिपा लीं और धूप न गिरने दी ज़मीन पर ।

बहुत सुहावना लग रहा था । रामलीला का लम्बा-चौड़ा मैदान खाली पड़ा था और उस कोने में टोले-मुहल्ले के लड़कों को साथ लिये रावण की बाँह रक्खे बैठे थे दोनों भाई ।....

घड़ी पीछे बाप आ पहुँचे । रावण खड़े होने की जगह निश्चित थी ?

पर पाँच साल से रामलीला रुकी थी । उस जगह पर घास जम आई और मिट्टी ऊँची हो गई ।

बाप ने घास हटाई । फिर फावड़े से जगह 'इकसार' करके गड्ढे खोदने लगे पैर गाड़ने को । लड़के दूसरी बाँह लेने दौड़ गये ।....

शरीर में जैसे बिलकुल 'दम' न रहा था—बुख़ार ने सारी ताकत जैसे चूस ली थी । फावड़ा चलाया तो दो-तीन हाथ मारते ही साँस फूलने लगी और हाथ काँपने लगे । सुस्ताने को रुक गये और ज्यों ही इधर को मुँह किया, लम्बरदार को खड़ा पाया सामने ।

विह्वल हो गये थे । गद्‌गद् हो कर बोले—'जुम्मन बेटा, भगवान् के यहाँ तुम्हारी यह 'सेवा' ज़रूर लिखी जाती होगी । हद कर दी तुमने !"

लजा कर कहा—"दाऊ, मैं भला किस क़ाबिल हूँ, पापी जीव हूँ—मुझ से भगवान् की कुछ सेवा नहीं हुई कभी !"

लम्बरदार ने गद्‌गद् हो कर कहा—"ऐसी बात मत कहो बेटा, अजामील की कथा नहीं सुनी है क्या ? कबीर भक्त हुये हैं, रैदास सन्त हुये हैं । भगवान् के यहाँ छोटे-बड़े का भला क्या विचार ! जो अच्छा इन्सान है, वही भगवान् का प्यारा है ।

सच कहता हूँ, तुम ने मुझे 'नीचा' कर दिया—इतनी बीमारी से उठे हो, इतनी कमज़ोरी है, और यह तंगी पैसे की ! तिस में सब कर डाला, सब बोझ अपनी खुशी से अपने सिर पर ले लिया। आज मेरी आँखें खुल गईं बेटा ! इस गाँव में 'राम के भक्त बहुत हैं, पर 'सेवक' अकेले तुम हो—तुम्हारे हृदय में भगवान् का वास है बेटा !"

सिर नमा लिया और शरमा कर कहा विह्वल हो कर-"दाऊ मैं भला किस क़ाबिल हुं, सब तुम्हारे चरणों का पुण्य-प्रताप है; मैं तो एक 'अदना' हूँ—तुम्हारी जूतियों का ग़ुलाम।"

लम्बरदार ने कहा—"तुम जुम्मन नहीं, मेरे बेटे हो, अदना नहीं, इस गाँव की शान हो; ग़ुलाम नहीं, मालिक हो मेरे। मुझे यक़ीन न होता था कि इस बार रावण बन सकेगा—बेटा, तुमने मेरी, अपनी और सब गाँव की इज्ज़त रख ली समझो। साहब आयेंगे कल। तब उन के सामने तुम्हें 'पेश' करूँगा और उन्हे बतलाऊँगा कि 'गाँव का रूप' किसे कहते हैं—ममता किसे कहते है !"

जुम्मन ने और सिर झुका लिया।

लम्बरदार चारो ओर देख कर बोले—"मैं मजूरा भेज देता हूँ दो। उन से काम लो, तुम कमज़ोर हो अकेले कर नहीं पाओगे। लो बीड़ी पियो।"

जुम्मन ने उठकर बीड़ी ली फिर उसे सुल्गाकर बोले विनती कर के-"दाऊ, मैंने कभी मजूरा से काम लिया है रावण में ! कमज़ोरी तो है, पर दिल नहीं मानता; दूसरा कोई आकर रावण में हाथ लगाये, यह मुझसे बरदास्त न होगा।"

पीठ ठोंककर बोले—"बहादुर तेरी जैसी मर्ज़ी हो वही कर। मैं न बोलूंगा। शहर जा रहा हूँ;रात तक लौटूंगा। आज शाम तक सब 'ठीक' कर लो बेटा, क्या जानें साहब लोग कल जल्दी ही आ जाँय यहाँ !"

× × ×

सारे दिन बादल छाये रहे और सारे दिन पुरवैय्या हवा बहती रही। बादलों की ओर देख कर सब घबराये कि कहीं पानी न गिरने लगे।

पर जुम्मन न डरे। नवमी की 'लीला' करने जब भीड़ आयी तो सब ने देखा कि— आसमान के बीच सिर उठाये रावण की पचास फ़ीट ऊँची मूर्ति खड़ी है सामने। देखनेवाले आँखें फाड़कर बोले कि—'वाह, ऐसा रावण तो कभी न बना

था रामलीला में। कितनाऊँचा है! बाप रे, इस की ओर देख कर तो दिल बैठा जाता है, कैसा सिर हिला रहा है! आँखें तो देखो इस की! हाथ में तलवार लिये खड़ा है राक्षस! हँस रहा है पिशाच हम सब की ओर देख कर, हम सब जैसे 'तिनका' हों!'

इस बार तो कमाल कर दिया जुम्मन ने। जुम्मन के हाथ हैं कि जैसे साँचे में ढाल दिया है रावण; इसे भला कोई मूर्ति कहेगा— सचमुच का-सा लग रहा है। जान पड़ी हो जैसे इस में! कैसी कारीगरी से बनाया है जुम्मन ने!

पर जुम्मन को जैसे होस न था आसमान के बीच, रावण के सिर के पास बैठे थे, बाँसों की टटरी पर। और रावण के गले में सुनहरी पन्नी के फूल बना कर लगा रहे थे बराबर।

कोमिल जोषी ने रावण देखा तो दिल बाग़-बाग हो गया। रामलीला कमेटी के सब आदमी दाँतों तले अँगुली दबा गये। एक दूसरे से बोले कि—गजब कर दिया भाई जुम्मन ने!' पर कोमिल जोषी के मुँह से तारीफ़ का एक शब्द न निकला। हृदय भर-भर आया, हाय क्या कहें, क्या कह कर इस 'वीर' को शाबाशी दें?

पचास फ़ीट ऊँचे रावण के चरणों में क्षुद्र जीव की तरह खड़े हो कर ऊपर को मुँह करके पुकारा—"जुम्मन भैया!"

जुम्मन ने नीचे को ताका और आसमान के बीच, रावण के सिर पर, बाँस की टटरी पर बैठे-बैठे कहा—'हाँ भैया!"

कोमिल जोषी ने आँखों में स्नेह भर कर कहा—"बादल आ रहे हैं।"

पर जुम्मन को डर न लगा। चेहरे पर सन्तोष और गर्व की मुसकान खिली थी, लापरवाही से कहा हँसकर—"बादलों को आने दो। मेंह न बरसेगा। भगवान् इतने 'निर्दयी नहीं हैं भैया!"

सब लोगों की नजरें आकाश की ओर उठ गईं। भूरे बादल चारो ओर से झुकते चले आ रहे थे। सब के हृदय जैसे आशंकित हुये हों पर तो भी सब ने यही कहा—"नहीं, पानी नहीं गिरेगा, ऐसे बादल नहीं है।"

पानी सचमुच न गिरा। नवमी की रामलीला होती रही आनन्द से और जुम्मन रावण को सजाते रहे आसमान के बीच बैठे।"...

दोनों लड़के सिंहासन के पास खड़े रामलीला देख रहे थे। उस दिन 'मेघनाद' का वध था। अन्त में लक्ष्मणजी ने मेघनाद को मार डाला और उस दिन की लीला समाप्त हुई। बानरों की सेना मैदान में हर्ष से उछलती फिरी और बाजे बज उठा फिर और 'राजा रामचन्द्र की जय' के साथ सिंहासन चल दिया गाँव को। मैदान खाली हो गया।

दोनों लड़के कूदते हुये रावण के पास आये और पतली आवाजों से चिल्ला उठे नीचे से—"बप्पा, ओ बप्पा!"

बप्पा ने ऊपर से झाँककर कहा—"हाँ बेटा तुम दोनों घर जाओ और अपनी अम्माँ से माँग कर छतरी दे जाओ हमारी।"

मुन्नू ने बड़े भाई से कहा—"दादा अभी हमारे मुँह पर एक बूँद गिरी पानी की!"

धुन्नू बोला—अरे यह देखो, हमारी बाँह पर गिरी बूँद! चलो जल्दी से चलो। बप्पा की छतरी ला दें।" और दोनों चौकड़ी भरते घर की ओर चले।

÷ × ÷

दिन बहुत पहिले डूब गया था चारो ओर से बादलों की भयानक अँधियारी झुक आई। पुरवैय्या हवा खूब जोरों से बह रही थी। रावण की मूर्ति जैसे गाँव के खाली मैदान को ताक रही थी हवा से उसका सिर घूमने लगा और सिर के ऊपर का मुकुट और मुकुट के ऊपर का छत्र हवा के झोकों से फर-फर करके उड़ने लगे ऊपर को।....

सहसा उत्तर की ओर चमचम करके तीव्र कौंदा हुआ और गड़-गड़ करके बादल गरज उठे।....

जुम्मन ने हाथ का काम रोक दिया। फिर आकाश में चारों ओर दृष्टि कर देखा—चारो ओर बादल लदे खड़े थे और अँधियारी झुक रही थी चारों ओर से।

हृदय ने काँप कर कहा—'क्या अब पानी बरसेगा!'

मन ने धीरज धार कर कहा—'नहीं, पानी न बरसेगा। भगवान इतने 'निर्दयी' है!'

उत्तर में फिर कौंदा हुआ फिर एक वार बादल गड़गड़ा उठा ।....

जुम्मन ने चारो ओर देखा और धीरे से कहा—'पानी न बरसेगा । भगवान् क्या इतने निर्दयी हैं !'

तभी पानी की तीन-चार बूंदे मुंह के उपर आ पड़ीं । जुम्मन ने गाँव कीं ओर जानेवाली राह में दृष्टि लगा दी । अस्पष्ट-सा दीखता था । लड़के अभी तक छाता ले कर न लौटे । कहीं अब पानी न गिरने लगे ! धीरे से कहा—'नहीं पानी न गिरेगा । भगवान् क्या इतने निर्दयी हैं !'

पानी की बूंदें एक-एक करके मुंह के उपर गिरने लगीं ।....

क्या पानी बरसेगा ? नहीं, पानी न बरसेगा । भगवान् क्या इतने निर्दयी हैं ।

....बूंदें और बढ़ने लगीं । हवा के झोंको से रावण का मुकुट-छत्र फर-फर ! करके ऊपर को उड़ने लगा । जुम्मन ने कस कर छत्र-मुकुट पकड़ लिये और आकाश की ओर देख कर कहा—"भगवान् निर्दयी न होओ ! पानी वरसेगा तो रावण कैसे बचेगा ! रावण बिगड़ गया तो मैं अपनी जान दे दूंगा, भगवान् मैं प्राण त्याग दूंगा यहीं, प्राण त्याग दूंगा !"....

भगवान् ने क्या यह करुण प्रार्थना सुनी ? पर कहाँ ? पानी तो न रुका !....

आकाश के बीच, रावण के सिर पर सुध-बुध खोये जुम्मन बैठे थे . छत्र-मुकुट हाथों से रोके और वादल उन पर पानी गिरा रहे थे आसमान से ।....

....भगवान् निर्दयी हो गये क्या ?....

आकाश के बीच, सुध-बुध खोये बैठे थे छत्र-मुकुट हाथों से रोके और बादल उन पर पानी गिरा रहे थे आसमान से ।....

....नीचे से किसी ने कातर स्वर में पुकारा—"छाता ले जाओ!"

फिर दो पतली आवाजें आयीं—"बप्पा, हम आये हैं ।"

वाँस पकड़-पकड़ कर नीचे उतर आये । चेहरा सफ़ेद ! जुबान में शब्द न थे । आँखें फटीं ।

दोनों लड़के और माँ पानी में भीगते खड़े थे एक छाते में । माँ ने लालटेन के प्रकाश में वह कातर मुख देखा और रो कर बोली—घबराओ मत घबराने से क्या होगा ! भगवान् निर्दयी हो गये हैं । लो, यह छाता ले जाओ । किसी तरह सिर बचा लो । बाक़ी फिर बन जायगा । सिर नहीं बना मिलेगा दुबारा ।"

"''छर-छर करके पानी गिरने लगा चारो ओर।''''

जुम्मन ने कुछ न कहा। वह छाता ले लिया और चुपचाप बाँसों पर पैर धरते उपर चढ़ गये और पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता तान कर खड़े हो गये आसमान में।''''

दोनों लड़के और माँ पानी में भीगते देखते रहे ऊपर को।''''

पानी छर-छर करके गिरने लगा चारो ओर।

चारो ओर काला निचाट अँधेरा छाया था। पूरब-पच्छिमं में जहाँ-तहाँ बिजली चमक उठती और वादलों की गड़गड़ाहट होती और मेंह ज़ोर पकड़ता जाता था।''''

पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता ताने खड़े थे आसमान में।

पानी ज़ोर पकड़ने लगा। दोनों लड़के और माँ पानी में भीगते देख रहे थे ऊपर को।''''

फिर धीरे-धीरे 'सोलह धार' वर्षा होने लगी। लड़के भयभीत हो उठे। माँ से चिपट कर वोले—"दप्पा को बुला लो ऊपर से!"

वह जैसे संज्ञाहीन हो गई थी। जैसे झटका लगा हो। पानी मुँह पर थपेड़े मार रहा था। मुँह पर दोनों हाथ रख कर ऊपर को मुँह करके कातर स्वर में पुकारा—"नीचे उतर आओ।"

पर जुम्मन ने न सुना। पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता ताते खड़े थे आसमान में।

दोनों लड़के एक साथ पतली आवाज़ों में पुकार उठे—"वप्पा नीचे उतर आओ।"

"नीचे उतर आओ। भींगो मत। बुखार आ जायगा।"

"वप्पा, नीचे उतर आओ"

"नीचे उतर आओ। अव रावण न वचेगा। भीगो मत।"

"वप्पा, नीचे उतर आओ।"

"नीचे उतर आओ। सुनते नहीं!"

"बप्पा, नीचे उतर आओ।"

कोई जवाब न आया। पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता ताने खड़े थे आसमान में।

रो कर कहा—"नीचे उतर आओ। रावण के पीछे 'पिरान' दोगे क्या? सुन लो, नीचेउतर आओ, सुन लो!"

दोनों लड़के पानी में भीगते चिल्ला उठे—"हाय बप्पा, हाय बप्पा!"

मैदान में चारो ओर पानी ही पानी हो गया। रावण के ऊपर से रंग-बिरंगा पानी बह कर गिरने लगा। पर आसमान से पानी बरसना बन्द न हुआ। उसी तरह झम-झम करके पानी गिरता रहा और उसी तरह कातर पुकारें जाती रहीं ऊपर को—"नीचे उतर आओ! रावण के लिये 'पिरान' मत दो!"

"हाय बप्पा, हाय बप्पा!"

और पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता ताने खड़े रहे आसमान में।

× × ×

सुबह चार बजे शहर से ट्रेन आती है। मोटर निकल गया; इक्का-ताँगा भी न मिला। लम्बरदार सारी रात स्टेशन पर पड़े रहे सामान लिये और सारी रात मेंह बरसता रहा प्लेटफ़ार्म के बाहर और सारी रात चिन्ता में डूबे रहे कि हाय, रावण का क्या हाल हुआ होगा! अगर गाँव में भी मेंह बरसा हो! इतने बादल हैं, भला गाँव में मेह न बरसा होगा! ओह, भगवान् यह क्या निर्दयता कर डाली! जुम्मन ने कितने परिश्रम से रावण बनाया है। हे ईश्वर! चाहे न बरसा हो गाँव में, चाहे रावण बच गया हो! हे ईश्वर, हे ईश्वर!

और इसी तरह ईश्वर को भजते गाँव तक आये।

स्टेशन के पार हुये तो आसमान से पानी गिरना रुका था। पर जहाँ देखो वहीं, पानी भरा था चारो ओर। हाय, यह क्या हुआ!....

घर जाने की सुधि न हुई। सब सामान कन्धे पर लादे यों ही लपके चले आये तेज चाल ले, जहाँ रामलीला होती थी और जहाँ रावण खड़ा था।....

दूर से रावण को देखा—सनाका हो गया। साम्प्रदायिकता का राक्षस भी। कागजों के रंग बह गये थे, भीतर के कागज भी फट गये थे। एक बाँह नीचे को लटकी पड़ी थी। पैरों के पास पानी बह रहा था आगे-पीछे।....

और पास आ कर देखा—जुम्मन की बहू और दोनों लड़के उसी पानी में भीगते बैठे हैं थर-थर काँपते।

बहू कुछ न बोली। न चीखी-चिल्लायी और न फ़रियाद की। उसी तरह गुमसुम बैठी रही।

केवल दोनों लड़कों ने शीत से थर-थर काँपते रोते-रोते कहा—"लम्बरदार बाबा, हमारे बप्पा को उपर से उतारो!"

अब देखा ध्यान से ऊपर को। पागलों की तरह रावण के सिर पर छाता ताने खड़े थे आसमान में।

चिल्ला कर कहा—"जुम्मन बेटा, नीचे तो आओ।"

जुम्मन ने जवाब न दिया।

और चिल्ला कर कहा—"जुम्मन बेटा, मैं आ गया हूँ, नीचे उतर आओ। उतर आओ बेटा!"

पर जुम्मन ने न सुना। लम्बरदार ऊपर को मुँह किये देखते रहे। दोनों लड़के शीत से थर-थर काँपते रो रहे थे।

जाने किस ने पीछे से कहा—मैं चढ़ जाऊँ ऊपर?"

लम्बरदार ने सिर घुमा कर देखा—कोमिल जोषी थे और रामलीला कमेटी के दो आदमी उन के पीछे छिपे से खड़े थे चुपचाप।

लम्बरदार ने तीनों की ओर आग्नेय नेत्रो से देखा और दाँत पीस कर बोले—"हत्यारो, अब आये हो! सारी रात ये अभागे यहाँ भीगते रहे! जुम्मन ऊपर टँगा रहा सारी रात। तुम सब मर गये थे क्या? डूब मरो नीचो, इसी पानी में डूब मरो!"

किसी ने कुछ न कहा। तीनों आदमी अपराधियों की तरह सिर डाले खड़े रहे।

दोनों लड़के थर-थर काँप कर रो कर बोले—"बाबा, हमारे बप्पा को उतारो!"

लम्बरदार ने दोनों लड़कों को अपने पास खींचकर कलेजे से लगा लिया और पुचकार कर बोले—"अभी लो बेटा, अभी उतारा!" फिर कोमिल जोषी

की ओर देख कर आक्रोश से कहा—"खड़ा क्या है गधे की तरह, ऊपर चढ़ न जल्दी से!"

कोमिल जोषी ऊपर चढ़ने लगे।....

पागलों की तरह जुम्मन रावण के सिर पर छाता ताने खड़े थे आसमान में।....

सब देखते रहे। सब देखते रहे।

कोमिल जोषी बाँसों पर पैर धरते जुम्मन के पास जा पहुँचे।

सब देखते रहे। सब देखते रहे।

पागलों की तरह जुम्मन रावण के सिर पर छाता ताने खड़े थे आसमान में।

कोमिल जोषी ने जा कर वह छाता अपने हाथ में लिया और तब सब ने देखा—जुम्मन की संज्ञा शून्य देही ऊपर से गिरती आ रही है बाँसों से टकराती।

★

प्रेमा

गाँव खूब बड़ा था। ब्राह्मण और ठाकुर बसते थे। इसी से बड़े घरानों
कहारिन ही पानी भरती थीं। पर जो ग़रीब थे, उनके घर की औरतें और ल
कियाँ अँधियारा होने पर कुंये से खुद पानी खींचतीं।

साँझ हो चुकी थी और चारों ओर से उदासी भरा धुँधियाला घिर आ
था। हारों से लौटीं गायों के खुरों से धूल का गुबार राह में छाया था और कु
की भीड़ छँट गयी थी।

बूढ़ी मालिन को कम दीखता है; लाठी टेक कर चलती है। वह अप
छोटी सी कलसी लिये हौले-हौले चली आ रही थी कि उधर से धनवन्ती
पहुँची, खाली घड़े लटकाये। मालिन ने रुककर पूछा—"कौन ?"

धनवन्ती पास आकर बोली—"मैं हूँ बुआ।"

मालिन बोली—"धनवन्ती! अब इन आँखों से सूझता नहीं बेटी, पा
भरने जा रही हो ?"

धनवन्ती बोली—"हाँ बुआ, तुम्हें तो कम दीखता है, पर इस गली में
सूझते भी पटक खायेंगे! कैसे गड्ढी-गड्ढा कर रक्खे हैं इन गाड़ीवालों
इनकी लाश उठे! इधर राँड़ कीचड़ भरी है। जो कहीं कोई आने-जाने वा
इस दलदल में जा पड़े! राम-राम, इतने घर हैं यहाँ, किसी से यह नहीं हो
कि तनिक उजियाला कर दें गली में!"

कुन्दना की चाची कुंये पर थी वह पूछ उठी—"क्या है ननदजी ?"

धनवन्ती कुंये का 'मनि' पर अपने घड़े रख कर बोली—"इन मुहल्लेवा
को रो रही थी। देखो तो, कैसा अँधेरा कर रक्खा है भलेमानुसों ने!"

कुन्दना की चाची ने कहा—"पहिले यहाँ सामने ही छोटे के बाप ला
टाँग देते थे सइ-साँज से। वे मर गये तो उसी दिन से लालटेन टँगनी बन
गई। अब अँधेरा छाया रहता है इस चौखट पर।"

हाथ पर फैला कर बोला कि—देख प्रेमा, यह रेखा—यह जो ऊपर तक चली गई है—भाग्य की है। तेरा भाग्य बहुत अच्छा है। खूब बड़े घर में तेरा व्याह होगा—' सुनकर उसके मुख पर रक्त उतर आया था, हाथ छुड़ा कर भागी थी और रामदेव ताली पीट कर हँसा था।....

उसके भाग्य की रेखा बहुत ऊपर तक है! उसका भाग्य बहुत अच्छा है—रामदेव ने उस दिन कहा था।

....फिर वह शहर गया पढ़ने। फिर इस शहर को छोड़कर कर दूसरे में गया। जाने को था उस दिन, रात को आया था। छत पर अकेले में उसे बुला लिया था। प्रेमा के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और भरे गले से कहा था कि– 'प्रेमा, अब जाने कब तुम से भेंट होगी!' वह सिसक कर रोने लगी थी। रामदेव ने अपने हाथ से उसके आँसू पोंछे थे और एक किताब दी थी स्मृति के लिये और दोनों हाथ थाम कर आँसू बहाकर कहा था कि—'मुझे भूल मत जाना—'....सोचकर आज फिर प्रेमा की आँखें भर आईं। वह विदा का दृश्य हमेशा ही उसकी आँखों के सामने आ जाता है। और हमेशा ही उसके आँसू निकाल देता है। चार सालें हुयीं। चार साल से पहिले की बातें हैं और इन चार सालों के बीच का इतिहास मानों काले परदे पर है—उसी काले परदे पर इन चार सालों की कहानी अंकित है।

काले परदे पर मातृ-पितृ-हीन, असहाय कङ्गाल भाई-बहिन की दिन-रातों के तुच्छ विन्दु, तुच्छ रेखायें छिपती गई हैं और इसी तरह चार सालें निकल गई हैं आगे को।....

तब से फिर और नहीं देख पाई रामदेव को। फिर आज तक उससे भेंट न हुई।

....आज चार साल के बाद फिर....

एक सन्तोष, एक अव्यक्त आह्लाद, एक लज्जा, एक घबराहट हृदय के भीतर घिर-घिर आये।....कह गया है—अभी आ रहा हूँ। रात को तुम्हारे पास रहूँगा।

प्रेमा के हृदय की गति और तीव्र हो गई। क्या वह स्वप्न देख रही है?—एक बार घबराकर उसने चारो ओर देखा।

\+ \+ \+

रामदेव खाट पर आ लेटा। यह कलेजे के भीतर क्या हो रहा है !

रामदेव इधर को मुंह करके पूछने लगा—"तुम्हें शाम को अकेले रहते डर लगता है न !"

प्रेमा के ओठों पर मुसकान आ गई। कुछ बोली नहीं और सिर झुका लिया। रामदेव उस मुसकान को निहार कर बोला—"डर लग रहा था तो मेरे घर क्यों नहीं चली आई ?"

पहिले प्रेमा ने नहीं बतलाया, पर बार-बार आग्रह करने लगा तो हार कर सिर नमाकर सच-सच बात कह दी हौले से—"शरम लगती थी—"

"शरम किसकी लगती थी ?"

प्रेमा ने कोई जवाब न दिया। उसी तरह सिर नमाये बैठी रही। घड़ी भर तक कोई कुछ न बोला फिर रामदेव अपने आप कह उठा—"चार साल बाद मैं गाँव में लौटा हूँ। कितनी बातें सोच कर आया था— कितना हर्ष और उल्लास लेकर। परन्तु यहाँ आकर विमूढ़ हो गया—सब ओर से निराशा पा रहा हूँ।"

प्रेमा सुनती रही सिर झुकाये।

रामदेव कहने लगा—"देखता हूँ, शहर का असर गाँव में भी फैल गया है। अपने मतलब की बात के अतिरिक्त लोग और कुछ सुनना नहीं चाहते ! तिस पर सब में जाहिली और अहंकार भरा है। छोटी से छोटी बात भी पूरी नहीं हो सकती। कोई मानता ही नहीं ! गली के बीच कीचड़ बहती है। जगह-जगह गन्दगी पड़ी रहती है। सब से हां प्रायः मैंने कहा। हम लोगों ने मिल कर सब सफ़ाई की। ताक़ीद कर दी। दो-चार रोज़ कुछ चला, उसके बाद फिर वही। अब मैं कल अपने हाथ से सब कीचड़ फिर हटाऊँगा। कैसे मन हो गये हैं इन लोगो के। अव्वल नम्बर के आलसी हैं और अपने तनिक से स्वार्थ को नहीं छोड़ सकते। पुस्तकालय खोल तो दिया, पर चन्दा कोई नहीं देता, उल्टी किताबें चुरा ले गये दस-पाँच। रात्रि-पाठशाला में सात-आठ लड़कों से ज्यादा होते ही नही। ठाकुरों का एक भी लड़का नहीं आया, इसीलिये कि उन लोगों की इस टोले में आने से तौहीन होती है !"—रामदेव हँसने लगा और बोला—"इस बेवकूफ़ी को कैसे दूर किया जाय—"

प्रेमा चुपचाप सुनती रही सिर झुकाये।

रामदेव तनिक रुक कर बोला—"और सब से ज्यादा तो आश्चर्य हुआ मुझको तुम्हें देख कर—" प्रेमा के कलेजे में धक् से हुआ। बहुत यत्न किया तो भी नहीं पूछ पाई कि क्या आश्चर्य की बात देखी है उन्होंने प्रेमा में।

तब रामदेव ही बोला—"जान पड़ता है, मुझसे बोलना तक तुम पाप समझती हो—"

प्रेमा के हृदय पर मानो किसी ने हंटर मार दिया सपाक् से।

रामदेव दुख भरी आवाज़ में बोला—"अकेली इस बात से मुझे कितनी भारी तकलीफ़ हुई, कितना कष्ट लगा है, ईश्वर ही जानते हैं। चार सालें तुमसे बिछुड़े हुईं और इन चार सालों में मुश्किल से कोई ऐसा दिन बीता होगा कि तुम्हारी याद न आई हो, तुम्हारी कितनी बातें रोज़ याद आती थीं। अक्सर तुम्हें स्वप्न में देखता था। देख कर जी में व्याकुलता हो जाती। सोचता, एक बार किसी तरह तुमसे भेंट कर जाऊँ। जाने कितनी बार तुम्हें चिट्ठी लिखी, लिख कर फाड़ डाली—"

प्रेमा नहीं बोली। कलेजा खूब ज़ोर से धक्-धक् होता रहा।

रामदेव अधलेटा होकर कहने लगा—"जाने क्यों तुम ऐसी हो गई हो! मुझसे तुमने एक बार यह तक न पूछा कि अच्छी तरह हूँ। जब गया था तब यहीं, इसी घर में तुम्हें सिसकती आँसू बहाती छोड़ गया था। उसी ममत्व को मन में बसाये रहा। वे आँसू एक दिन भी नहीं भूला। कैसे भूल सकता था, कैसे उन मोह की बातों पर धूल डाल पाता!···पर यहाँ अब लौट कर आया हूँ तो लगता है कि मानो हम लोगों का कोई 'परिचय ही नहीं है, कोई सम्बन्ध ही नहीं है। मेरे और अपने बीच, तुमने इन चार सालों में जैसे बहुत मोटी दीवार बना कर खड़ी कर ली है।"

प्रेमा फिर नहीं बोली। पर अब उसका हृदय और शरीर थर-थर होने लगा और लगा कि कोई कलेजे में छुरियाँ भोंक रहा है, सारी ताक़त से। उस अपार पीड़ को सहतीं बैठी रही।

रामदेव जाने कैसा स्वर करके बोला—"इन सब बातों को तुमसे कहना

भी नहीं चाहिये था। किस अधिकार से मैं तुम्हें ये बातें कह रहा हूँ। शायद अब कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें शायद सुनने की इच्छा भी नहीं है—"

अब और सहा नहीं जा जायगा। कलेजा निकला जा रहा है। कण्ठ रुँध गया। तब कातर वाणी से, काँप कर इतना ही कहा—"यह कैसे जान लिया—"

रामदेव ने मानो बल पाया। वह उठ कर बैठ गया। स्वर को संयत करके कहा—"मुझे एक महीने से अधिक हुआ यहाँ आये। तुमने इतने दिनो में कभी मुझसे बोलने की कोशिश की? कोई बात कही मुझसे—एक शब्द!"

कण्ठ रुँधा था। देही काँप रही थी। कातर वाणी से केवल इतना कहा—"कैसे ये बातें सोच लीं—" और आँसू बह चले।

रामदेव ने वह स्वर सुना और मानो निरुत्तर होकर कहा—"और मैं क्या अन्दाज़ लगा सकता था?"

आँसू छर्-छर् कर के गिर रहे थे। देही काँप रही थी? अँधेरे की ओर मुँह कर के उसी कातर वाणी से कहा—"और कुछ भी नहीं सोच सके! केवल मेरे ऊपर अविश्वास की बात सोच ली—"

रामदेव का हृदय भर आया। समझ नहीं पाया कि क्या कहे और बहुत सोच-समझ कर अन्त में उसने केवल यही कहा कि— "तब मुझसे भूल हुई—"

आँसू बह रहे थे। अँधेरे की ओर मुँह करके अपराधिनी बोली कातर होकर "सोचती थी—हम लोगो को भूल गये हो, अब याद न आती होगी। ऐसा लगता था कि अब कभी नहीं देख पाऊँगी।"

रामदेव विह्वल हो गया। उसने कहा—"तुम्हें भुला कर फिर और क्या याद रक्खूँगा प्रेमा!"

अपराधिनी बोली, आँसुओं की झड़ी बहा कर— 'मैं इस योग्य नहीं हूँ—"

''क्यों?''

अपराधिनी बोली आँसुओं की झड़ी बहा कर—"मेरे-तुम्हारे बीच अब समता नहीं रही। तुम बड़े आदमी हो, कालेज में पढ़ते हो। मैं ग़रीब हूँ, गँवार हूँ, दरिद्र हूँ। मैं क्या अब तुम्हारे याद रखने योग्य हूँ—"

रामदेव ने मानो बहुत दुःख पाकर धीरे से कहा—"यह सब तुम क्या कह रही हो प्रेमा !"

पर उसने न सुना। आँसुओं के बीच कहती गई पगली होकर—"उस दिन जब आये थे, बहुत इच्छा हुई कि एक बार तुम्हारे चरण छू लूं। कब से इस इच्छा को पाले थी। पर अपनी ओर देख कर साहस नहीं हुआ। तुम्हारी चरण-रज नहीं ले सकी—"कहती अपराधिनी ने घुटनों में छिपा लिया और फूट कर रो उठी।

रामदेव गद्‌गद् हो गया था। खाट से उठकर वह प्रेमा के पास आ बैठा और उसके सिर पर हाथ रख कर बोला विह्वल स्वर में—"आज यह तुम कैसी बातें कर रही हो प्रेमा ! मैं तो वही तुम्हारा 'रामू दादा' हूँ—"

तब अपराधिनी प्रेमा ने रामदेव की गोदी में अपना सिर रख दिया और रोती रही।....

रामदेव दरवाज़े की किवाड़ें शायद यों ही खुली छोड़ आया था। जाने कौन आदमी खुले दरवाज़े से भीतर चला आया और आँगन में आकर पुकार उठा—"पंडितजी, मास्टर साहब !" और रामदेव चपल गति से प्रेमा का सिर गोदी से हटाकर खड़ा हो गया। वह कुछ कहना ही चाहता था कि आनेवाला पीछे को घूमा और पलक मारते बाहर हो गया।

रामदेव अवाक् होकर खड़ा रहा।

× × ×

कल्याण सिंह ठाकुर का लड़का शहर के हाईस्कूल में पढ़ता था। उसकी 'लगुन' चढ़ रही थी। डिपटिन भी वहीं गई थीं और सारे गाँव में बुलावा था। सब गये, पर छोटेलाल नहीं गया। छोटेलाल पर कल्याण सिंह का बहुत स्नेह है। पिता के दोस्त हैं। चारो ओर नज़र दौड़ाई और अपने मजूरा से कहा कि—जा तो, जल्दी से छोटेलाल को बुला ला।" सो उसने लौट आकर कहा कि—"सरकार, वे हैं नहीं घर।"....'लगुन' चढ़ गई और एकान्त हुआ तो अवसर पाकर सरकार के लड़के दुलारसिंह से बोला कि लल्लू, एक मज़ेदार बात सुनायें तुम्हें ?"—

क्या मज़ेदार बात है ?

बोला कि—"एक आदमी, जाने कौन था, मास्टर साहब की बहिन उसकी गोदी में....."

दुलारसिंह ने उसे डाँटा तो छाती हाथ रखकर बोला कि—"जिसकी कहो, कसम खा जाऊँ, मैंने अपनी आँखों से देखा है—"

+ + +

सुबह तड़के-तड़के छोटेलाल आ पहुँचा। जाने कहाँ से डलू बढ़ई को पकड़ता लाया। साईकिल दीवाल से टेंक दी और कोठे की किवाड़ों के पार आकर डलू बढ़ई से बोला—"भीतर आ जाओ दाऊ।"

किवाड़ों की 'चूरें' टूट गई थीं। भिड़ते न थे, कोठा यों ही खुला रहता। प्रेमा जाने कितनी बार कह चुकी थी कि भैया, किवाड़ें ठीक करवा दो कोठे की।

अब आज उसकी सायत आ गई।

डलू बढ़ई ने किवाड़ें घुमा-फिरा कर देखीं, फिर वह वहीं बैठ कर अपना बसूला चलाने लगा खट्-खट्।

छोटेलाल जाकर नहाया-धोया, सन्ध्या-पूजा की फिर प्रेमा को पुकार कर बोला—"कलेवा करूँगा, कुछ है खाने को?"

चाची की दी हुई गुझिया कटोरी में रख कर प्रेमा ले आई और छोटेलाल वहीं पूजा के आसन पर बैठा खाने लगा।

अब तक बात न हुई थी अब प्रेमा को अपनी गुस्सा की याद आई तो नाराजगी के स्वर में पूछा—"रात क्यों नहीं आये?"

छोटेलाल के मुंह में गुझिया थो। उसे निगल कर बोला—"सच बताऊँ कि झूठ?"

प्रेमा ने रोका तो हँसी आ गई। हँस कर कहा—सच बताओ।"

छोटेलाल ने कहा—"अच्छा सुन, रात की गाड़ी से कांग्रेस के सभापति आनेवाले थे। इसी से रुक गया, उन्हें देखने को।"

"आये फिर कांग्रेस के सभापति?"

"आये।"

प्रेमा को फिर गुस्सा आ गया। नाराज़ होकर कहा—"तुम बड़े बुरे हो भैय्या! मुझे क्यों न ले गये? मैं भी देख लेती!"

छोटेलाल हँसकर बोल—"अरे पागल, मुझे क्या पहिले से मालूम था! वे तो अचानक आ गये। देहली जा रहे थे।
देखनेवाले सब स्टेशन पर पहुँच गये थे।"

प्रेमा को विश्वास हो गया तो उसने सोचकर पूछा—"क्या कहा भैय्या उन्होंने? कोई बात कही?"

छोटेलाल पानी का घूँट पीकर बोला—"और क्या कहते, यही कहा कि लोग खद्दर पहिनो, चरखा कातो और गुलामी तोड़ो।"

प्रेमा को याद आई। चौंक कर बोली—"भैय्या, मेरा चरखा बनवा दो दाऊ आ गये हैं, अभी बनवा दो। मैं भी कातूंगी चरखा।"

छोटेलाल ने खड़े होकर कहा—"बनवा दूँगा।"....

उसी समय चप्पलों की आवाज़ करता रामदेव आ पहुँचा। प्रेमा सामने ही खड़ी थी। दोनों की दृष्टियाँ अनायास ही मिल गई। ओह!—लजाकर भीतर को भाग गई वह।

यह चिर स्नेहमयी दृष्टि पा ली है; सारे विश्व का वैभव मिल गया है। अब कुछ अभाव नहीं रहा। पिछली रात उसके हृदय की सारी रिक्तता उसके मन का सब दुख-दर्द हर ले गई है। वह आज मर जाय तो भी दुख नहीं लगेगा।....
लजा कर भीतर खड़ी थी और उल्लास हिलोरें मार रहा था।

छोटेलाल ने रामदेव का हाथ पकड़ा और उसे बाहर ले गया। नीम के नीचे, एकान्त में तख्त पड़ा था एक। उसी पर दोनों आ बैठे। और छोटेलाल ने बताया कि कल रात कांग्रेस के सभापति को देखने के अतिरिक्त और क्या किया।

आशय था कि—दो लड़के हैं। एक कें ज़मींदारी है थोड़ी-सी और मिडिल पास है। दूसरा इण्टर में पढ़ रहा है और पिता चुङ्गी में क़्लर्क हैं।

सुनकर रामदेव को प्रसन्नता हुई या नहीं, कौन जाने।

छोटेलाल बोला—"जो किसी तरह इस दूसरे लड़के को पा सकूँ तो जीवन सफल समझूँ अपना। प्रेमा को योग्य वर मिल जाय, यही मेरे जीवन की चरम

अभिलाषा है। और कुछ मुझे करना-धरना नहीं है। उसे बापू मेरे ऊपर छोड़ गये हैं, सब के बदले मेरे लिये अब वही है।" और उसने रामदेव से पूछा कि—तुम्हारी क्या राय है ?" तो रामदेव बोला कि—ठीक है। मैं तो सदा शिक्षा को महत्व देता हूँ।"

छोटेलाल प्रसन्न हुआ, फिर उसने एक साँस खींच कर कहा—"इससे बढ़कर और योग्य वर प्रेमा के लिये नहीं पा सकूंगा। उसके पिता यदि राज़ी हो जांय—शायद लेन-देन का प्रश्न उठे ईश्वर ने मुझे किसी योग्य नहीं किया। उतनी-सी मेरी आमदनी है, इतनी-सी औक़ात है! जाने वे लोग राज़ीहोंगे या नहीं!"

रामदेव धीरे से कहा—"राज़ी होंगे क्यों नहीं होंगे—"

छोटेलाल ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"कल रविवार है, मेरी छुट्टी है। वे लोग मान जायें तो कुछ 'शगुन' कर आऊँगा। तुम चलोगे मेरे साथ ?"

रामदेव ने कहा—"चलूंगा।"

× × ×

उधर से लौटे तो दोनो चुप थे। गोधूलि आ गई थी और सड़क के बीच दोनों साथी चुप्पी, थकान और उदासी लिये चले आ रहे थे।

गाँव पास आने लगा। एक मुराव अपनी बारी रखाने आ रहा था। आमने-सामने हुये तो उसने दोनों को पालागन की और आगे बढ़ गया। निस्तब्धता को वह तोड़ गया तो मानो बोलने का साहस हुआ। छोटेलाल ने मुँह खोला और तनिक खाँस कर कहा—"अब क्या कहते हो ?"

रामदेव ने धीरे से कहा—"सोच देखो और कुछ दिन।"

छोटेलाल बोला—सोचने में यह लड़का हाथ से निकल जायगा। उसकी जाने कितनी शादियाँ आ रही हैं। बैठा रहेगा क्या ?"

रामदेव चुप हो गया। छोटेलाल ने थोड़ा रुक कर कहा—एक उपाय है—"

"क्या ?"

बोला—जितना वे माँगते हैं, उतना दे दूँ। पन्द्रह सौ बैठेगा सब।"

रामदेव नहीं बोला। छोटेलाल ने थोड़ा रुक कर कहा—'और तुम्हीं यह काम कर पाओगे।"

"क्या ?"

जगेसर की बहिन ने घड़े को रस्सी से बांध कर कहा—"सब करमों की बात है भैना ! कहाँ तो छोटे के बाप अपने बालकों को ऐसे लाड़ लड़ाते थे और कहाँ दोनों अब ऐसे अनाथ हो गये—कोई सहारा न रहा । तुमने प्रेमा को देखा है ?"

कुन्दना की चाची बोली—"अभी तो वह पानी भर ले गई हैं, घड़ी भर पहिले । सच कहूँ, बड़ा तरस लगता है लड़की पर । मुँह निकल आया है बेचारी का, जैसे कमलकली सूख गई हो । हाय, कैसी हो गई है प्रेमा ! कोई बात पूछो तो ऐसे गिड़गिड़ा कर बोलती है कि कलेजा निकलने लगता है ।"

जगेसर की बहिन ने कहा—"छोटे लाल शहर में पढ़ाने चला जाता है और वह जरा-सी बालक साँझ-साँझ तक अकेली घर में बैठी रहती है । क्या से क्या हो गया !"

धनवन्ती बोली—"ये डिपटिन भी तो आ गई हैं, सामने वाली ।"

"चार साल बाद आई हैं ।"

"सुनते हैं, इन पर ढाई सेर सोना हो गया है ।"

"होगा ! मालिक इतना कमा कर रख गये हैं, इसमें अचरज की कौन सी बात है । और अब तो दो दिन पीछे लड़का भी कमाने लगेगा चाहे तो सोने की अटारी बनवा लेंगी ।"

धनवन्ती कहने लगी—"सुना है, लड़का बहुत पढ़-लिख गया है । बड़ा आदमी बनेगा । तुमने देखा है उसे ? सुनते हैं, बहुत सुन्दर है और भला है ।"

"हाँ, बहुत भला है । वह बाप की तरह मतलबी और कंजूस नहीं है । यह 'गरियारों का पानी उसी ने रुकवाया है, सब से कह-कह कर । ताल किनारे-वाली कुंइया पक्की करवा दी भंगियों के लिये । गाँव भर की भलाई पर नजर है उसकी । सब को समझता रहता है ।"

धनवन्ती बोलीं—"गोबर में कमल पैदा हो गया समझो ।"....

सब जनीं अपने घड़े भर कर कुंये से उतर चली कि सामने से एक सफेद-सी छाया-मूर्ति निकल गई ।

जगेसर की बहिन ने धनवन्ती का कन्धा पकड़ कर धीरे से कहा—"यही है !"

धनवन्ती घूम कर देखने को हुई कि डिपटिन का लड़का रामदेव मोड़ से आगे निकल गया।....

....सामने घर की किवाड़ें खुली हुई थीं। शीघ्रता से वह घुसने लगा कि रुक गया।

सटी चौखट पर, किवाड़ की आड़ में जाने कौन खड़ा था चुप-चुप।

रामदेव ने झुकपुपे में उसे पहिचान कर पुकारा—"प्रेमा !"

"भैया आ गये ?"

धीरे से पतली काँपती-सी आवाज़ आई—"अभी नहीं।"

रामदेव तनिक रुका। जाने क्या कहना चाहता था। नही कहा। चौकठ पर चढ़ा और भीतर हो गया।....

माँ तरकारी छौंक रही थी। उसने रामदेव से पूछा—"किससे बात कर रहा था ?"

बोला—"प्रेमा थी। अँधेरे में खड़ी इन्तज़ार कर रही है छोटेलाल का।"

माँ ने कहा—"अभी तक नहीं आया छोटेलाल ? बड़ी नासमझी करता है। बेचारी लौंडिया इत्ती देर तक अकेली बैठी रहती है। माई नहीं—बाप नहीं भैया है सो ऐसा बतक्कड़ और ला परवाह। करम फूट गये हैं प्रेमा के, जिस दिन से बाप मर गये।....भय खाती होगी, इतने बड़े घर में कैसे इस कुबेला अकेली रहे ! बुला ले उसे, मेरे पास आ बैठे।"

रामदेव ने कहा—"तुम्हीं आवाज़ दे लो।"

तब कढ़ाई में तीन बार करछुली घुमाकर माँ ने पुकारा—"अरी प्रेमा ! ओ प्रेमा !"

पतली करुण आवाज़ में प्रेमा अपने आँगन से बोली—'हाँ चाची !"

"यहाँ आ जाओ बेटी, वहाँ क्यों बैठी हो अकेली, अँधेरे में ?"

पतली करुण आवाज़ में प्रेमा पुकार कर बोली—,,अब भैया आता होगा चाची फिर आऊँगी।"

× × ×

मुहल्ले-टोले में घर-घर दिये जल गये तो छोटेलाल शहर से साइकिल लिये लौटा। रसोईघर के कोने में मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी और प्रेमा

बैठी थी वहाँ । चूल्हे की आग का प्रकाश उसके करुण मुख पर पड़ रहा था। सिर से ओढ़नी उतर गई थी । पर ध्यान न था । घुटनों के उपर सिर रख लिया था तिरछा करके और बैठी थी देही की सुध-बुध खोये कि मन उसका जाने किस अथाह समुद्र में डूबता-उतराता चला जा रहा था । कहीं ओर-छोर नहीं है, विराम नहीं है ।

धूल चढ़े पैरों से छोटेलाल उसके सामने आकर खड़ा हुआ । पर प्रेमा को सुधि न हुई । छोटेलाल उसका वह मुख देख कर मन ही मन रो उठा और एक बार तीव्र इच्छा हुई कि उस मातृ-पितृ-हीन अनाथ बहिन को कलेजे से छिपा ले । सामने ही मुरझाये फूल-सा करुण चेहरा आग के प्रकाश में सो रहा था । छोटेलाल का दिल भर आया । पर प्रेमा को सुधि न हुई । सब की खबर बिसारे बैठी थी कि मन उसका जाने किस अथाह समुद्र में डूबता उतराता चला जा रहा था । कहीं ओर-छोर नहीं है, कहीं विराम नहीं है ।

छोटेलाल ने धीरे से पुकारा—"प्रेमा"

प्रेमा चौंक पड़ी । फिर चेहरे पर कातर मुसकान लाकर पुकार उठी—"भैय्या !';

छोटेलाल ने पूछा—"क्या बनाया है तूने ? "

प्रेमा मानो खुश होकर बोली—"मसूरी बनाई है । रोटी सेकूं भैय्या ?"

छोटेलाल बोला—"बना ले रोटी मैं तेरे साथ ही खाऊँगा ।"

फिर वह कपड़े उतार कर कुंये पर डोल लेकर गया । बड़ी देर तक हाथ मुँह धोया और उधर से एक ताजी डोल भरता लाया ।

दोनों भाई-बहिनों ने साथ बैठ कर खाया और फिर पास-पास खाटें बिछा कर लेटे । दीवाल की कील पर लालटेन लटका ली और किताबें खोल ली ।....

बाहर सन्नाटा छाया था और अँधेरी रात कुंडलिया मारे बैठी थी चारों ओर से । राह में कोई कुत्ता भूंक रहा था और बूढ़ी मालकिन के खाँसने की आवाज जब-तब आ जाती थी ।

छोटेलाल अपने बिस्तर पर बैठा था प्रेमा खाट पर उलटी होकर लेटी थी । दोनों कुहनियों को जमाकर दोनों हथेलियाँ ठोढ़ी पर ली थीं और दोनों अलपक

आँखों से 'भैंय्या' के मुँह की ओर देख रही थी चुप-चुप और छोटेलाल उसे महाभारत की कहानी सुनाने लगा।

सहसा प्रेमा बोल उठी—"सुभद्रा श्रीकृष्ण की कौन थी भैंय्या ?"

"श्रीकृष्ण की बहिन थी।"

"तो अर्जुन तो श्रीकृष्ण के मित्र थे; अर्जुन की भी बहिन ही हुई। उसी से फिर "ब्याह कर लिया !"—धीरे से कहा।

छोटेलाल कहानी सुनाने में बहुत मशग़ूल था। जल्दी में बोला—"उन दोनों में भीतर 'प्रेम' हो गया था।"

—प्रेम हो गया था !

प्रेमा चुप हो गई। छोटेलाल फिर कहानी सुनाने लगा और बहुत दूर तक सुनाकर उसने पूछा—"अच्छा, यह अश्वत्थामा किसका बेटा था, बता तो !"

प्रेमा मानो स्वप्न से जगी। बोली—"कौन ?" और अपनी आँखें मलीं उसने।

छोटेलाल ने समझा—नींद आ रही है इसे। बोला—"अब तू सो जा। बाक़ी कल सुनाऊँगा।" और वह अपनी किताब पढ़ने लगा।

प्रेमा ने हौले से एक साँस खींची। और करवट लेकर पड़ रही।.... अर्जुन श्रीकृष्ण के मित्र थे। सुभद्रा श्रीकृष्ण की बहिन थी। अर्जुन ने सुभद्रा से ब्याह कर लिया। दोनों में भीतर ही भीतर प्रेम हो गया था।....

शायद बहुत बचपन में दोनों साथ-साथ रहे होगें। सुभद्रा बहुत सुन्दर होगी। बहुत गुणवती, बहुत शीलवती। राजा की कन्या थी तो राजा के लड़के से प्रेम हो गया। उसी राजा के लड़के के साथ फिर ब्याह हो गया....

अगर वह राजा की लड़की न होती, किसी ग़रीब की लड़की होती, तो क्या वह राजा का पुत्र अर्जुन उससे ब्याह करता ? नहीं करता शायद। कहीं राजा का पुत्र किसी ग़रीब की लड़की से ब्याह करता है ! और अगर प्रेम हो ? ना, राजा का पुत्र ग़रीब की लड़की से काहे को प्रेम करेगा ! कहीं ऐसा होता है....

प्रेमा ने हौले से एक साँस खींची और फिर इधर करवट ले ली। ऊपर असंख्य नक्षत्र चमक रहे हैं। प्रेमा एकटक होकर उन्हें देखती रही देखती रही और फिर मन ही मन बोली—'इन्हीं तारों में मेरे बापू होंगे कहीं !'....

\+ \+ \+

पहर भर दिन चढ़े खा-पीकर छोटेलाल शहर को चल दिया तो प्रेमा रसोईघर से बाहर आ खड़ी हुई सब काम छोड़ कर और नीची आँखें किये बोली—'भैया, जल्दी आना। मुझे साँझ को डर लगता है अँधेरे में।'

छोटेलाल को हँसी आ गई. पूछा डर लगता है ?"

प्रेमा ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

छोटेलाल हँस कर बोला—"काहे का ? भूत-चुड़ैल का ?"

प्रेमा ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ !"

छोटेलाल और हँस कर बोला—"तो चाची के पास चली जाया करो।"

प्रेमा ने अस्वीकृति में सिर हिलाया। तो छोटेलाल ने अचरज से पूछा—"क्यों ?"

प्रेमा ने धीरे से कहा—"वहाँ जाते मुझे बहुत शरम लगती है—"

"शरम लगती है ! क्यों ?"

प्रेमा ने धीरे से कहा—"लगती है शरम।"

छोटेलाल ने सायकिल आगे बढ़ा दी और बोला—"अच्छा, अबेर नहीं करूँगा।"

...."चौखट के इस पार होते ही उसने रामदेव को खड़ा पाया। रामदेव बोला—"रात तुम शायद बहुत देर करके आये।'

छोटेलाल हँस कर पूछने लगा—"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"प्रेमा यहाँ अँधेरे में खड़ी तुम्हारी राह देख रही थी। जल्दी क्यों नहीं आते ?"

छोटेलाल ने मानो तनिक दुखी होकर कहा—"क्या कहूँ; कोशिश करता हूँ तो देरी हो जाती है—" फिर रुक कर बोला—"प्रेमा को डर लगता है। तुम शाम को जरा देख लिया करो।"

रामदेव ने कहा—"अब मैं याद रक्खूँगा।"....

और सूरज ढले अचानक रामदेव प्रेमा के सामने आ खड़ा हुआ तो वह बहुत संकुचित हो उठी और जाने कैसी एक घबराहट उसके जी में आ गई। तरकारी काट रही थी, सो भी जैसे रुक गया और लज्जा से सिमट-सिकुड़ कर बैठी रही निश्चल, भीतर घबराहट को दबाती।

इतनी देर तक कोई बात ही न हुई तो रामदेव को भी थोड़ा संकोच लगा। और उसने सोचकर पूछा—"भैया नहीं आये अभी ?"

प्रेमा पलक झुकाये हौले से बोली—"नहीं" उसका स्वर काँप रहा था।

"डर तो नहीं लगता है ?"

",नहीं।"—वहुल हौले से कह दिया। उसका स्वर काँप रहा था और लज्जा से घिरी सिमिट-सिकुड़ कर बैठी थी निश्चल, भीतर घबराहट को दबाते।

घड़ी भर रामदेव खड़ा रहा, फिर उल्टे पैरों लौट चला। तो अपने आप नज़र ऊपर को उठ गई और भीतर की वह घबराहट जहाँ की तहाँ रुक गई और जाने कैसी होकर वह उसका जाना देखती रही और फिर मानो चारो ओर भयानक शान्ति और चुप्पी आ विराजी और बाहर-भीतर सब कहीं स्थिरता हो गई और तब प्रेमा ने मानो अतल समुद्र में अपना मन डुबो लिया।....

एक राजा का लड़का—एक राजा की लड़की। उन दोनों में प्रेम हो गया। फिर व्याह हो गया दोनों का....

....राजा का पुत्र ग़रीब लड़की से काहे को प्रेम करेगा! कहीं ऐसा होता है।— प्रेमा ने मानो अतल समुद्र में अपना मन डुबो लिया।....

धीरे-धीरे सूरज पूरा डूब गया। रात घिरने लगी। आसमान की छाती फोड़ कर दो-चार तारे झिलमिला आये।

....धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा, रात काली होने लगी। प्रेमा उसी अँधेरे में, चौकठ पर खड़ी थी और आँखें आँसू बहा रही थीं छर्-छर्।

बाहर नहीं, कलेजे के भीतर खूब चीत्कार करके रो रही थी। सब ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया था।....

"प्रेमा !"

चौंक रही। घबराकर अँधेरे में जल्दी से आँसू पोंछ लिये।

यह अवाज़ सुनी। एक बार उस ओर देखा और हृदय का रक्त खद्-खद् बजने लगा।

रामदेव था। उसके नज़दीक आकर बोला—"भैय्या आज नहीं आयेंगे। मुझे सड़क पर होरी बनिया मिला था, उससे कहला दिया है।"

प्रेमा की आवाज न निकली। हृदय का रक्त उसी तरह खट्-खट् करके बजता रहा।

रामदेव ने पूछा—"खाना खा लिया तुमने ?"

तो उसी रुँधे हुये कंठ से कहा, बहुत धीरे से—"नहीं"

रामदेव सान्त्वना के स्वर में बोला—"तो तुम खाना खा लो। मैं अभी आ रहा हूँ। रात तुम्हारे पास रहूँगा। चिन्ता मत करो। सुबह भैया आ जायेंगे। तुम खाना खा लो—"

\+ \+ ÷

कह गया है—अभी आ रहा हूँ। रात को तुम्हारे पास रहूँगा। प्रेमा के हृदय की गति धीरे-धीरे तीव्र होने लगी। और एक सन्तोष, एक अव्यक्त आह्लाद, एक लज्जा, एक घबराहट उसके भीतर घिर-घिर उठे।

भैय्या वाली खाट रामदेव के लिये बिछा दी। लालटेन कील पर टाँग दी और दो घूंट पानी पीकर प्यास बुझा ली।

कह गया है—अभी आ रहा हूँ रात को तुम्हारे पास रहूँगा प्रेमा के हृदय की गति तीव्र होती गई....

पहिले रसोईघर के पास खड़ी रही। फिर 'उसारे' में आ गई। फिर खाट पर बैठी रही। फिर कोठरी के आगे चौखट पर जा खड़ी हुई। फिर लौट आई और आँगन के एक किनारे बैठ गयी चुप-चुप।....

....चार सालें हो चुकीं। चार साल मे पहिले की बातें आज फिर उसके सामने आ खड़ी हुई। उससे पहिले की, फिर और पहिले की—एक-एक बात मानो उसके अन्तस्थल की पाटी पर खूब गहरी होकर खुदी है। एक-एक बात उसे याद है। उन बातों को कैसे भूलेगी ? कैसे वह उन्हें मिटा पायेगी ?

अब आज जीवन ऐसा हो गया है। तब क्या वह आज की तरह थी ! आज लगता है कि स्वप्न था एक—सो अचानक आँख खुल जाने से टूट गया। इसी तरह उसे पिछला सब याद आता है।

इतनी हँसीखुशी, इतने खेल- तमाशे, इतनी लड़ाई-धड़ाई, रोना-धोना और मान-गुमान। फिर स्लेट पेंसिल, किताबें-कापियाँ और दुपहरियों-दुपहरियों भर

की पढ़ाई। उन दिनों की याद उसे कभी रुलाये बिना नहीं छोड़ती। रामदेव की किताब पर उसने स्याही गिरा दी थी। तिस पर रामदेव ने उसे बहुत मारा। और जब वह अकेले में बैठ कर रो रही थी तो रामदेव ने आकर उसके निहोरे किये और कहा—'लो, तुम मुझे मार लो!' फिर एक पैसे का पेड़ा लाकर उसे खिलाया था।''''माँ से छिपाकर शकरकन्द और आलू दुपहरियों में भून-भून कर उसने रामदेव को खिलाये बदले में रामदेव ने उसकी कापियाँ टाँको और किताब की जिल्द बाँधी।दूसरे दर्जे में रामदेव उससे गणित के सवाल निकलवाता था। उसने नियम बना दिया था—एक ग़लती पर एक पैमाना मारेगा। प्रेमा से ग़लती हो जाती तो वह कातर होकर अपने आप हथेली फैला देती उसके आगे। और रामदेव मारने लगता तो घिघिया कर कहती—'धीरे दादा-' हाय, ये बातें अब कैसे भुलाई जायेंगी! इतना सुन्दर स्वप्न देखा था—अब वह स्वप्न भुलाये नहीं भूलता। दुख की घड़ी में, कष्ट की वेला में, कङ्गाली-गरीबी में भी याद से नहीं उतरता। वे दिन कहाँ चले गये''''और उस दिन वह क्या हुआ था!—अपलक होकर अपनी ओर रामदेव को निहारता देख कर लज्जा लग आई थी। कितनी शरमाई थी वह!—रामदेव उसे अपलक होकर निहार रहा था। अचानक देखा और खूब लज्जा लगी— खूब शरम आई।''''अच्छा, क्यों लज्जा लगी थी? क्यों वह शरमा कर उसके सामने से भाग गई थी? शायद सयानी हो गई थी इसलिये।''''फिर उसी दिन से रामदेव के आगे आने में शरम लगती थी और हमेशा रामदेव से बातें करने को जी तरसता रहता था।''''फिर उससे एक दिन अम्माँ ने हँस कर कहा था कि—बेटी, अभी तू तनिक धीरे-धीरे बढ़। बाप को चार पैसे तो इकट्ठे कर लेने दे ब्याह के लिये।

ब्याह!—ब्याह के नाम से उसे कैसा डर लगा था। उसने अम्माँ से कहा था कि—मैं तो नहीं करूँगी ब्याह! अम्माँ बहुत हँसी थी।''''वह सचमुच सयानी हो गयी थी। इसी से शायद फिर और भी शरम आने लगी। रामदेव के सामने हमेशा लज्जा घेरने लगी।''''पर रामदेव नहीं मानता था। वह ज़बरदस्ती उसे जहाँ-तहाँ, जब-तब रोक लेता, ज़बरदस्ती बातें करता और ज़बरदस्ती हँसाता उसे।''''उस दिन रामदेव ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसकी हथेली अपने

बोला—"चाची को समझाना होगा। मुझे रुपये दे दें और मेरा घर लिखवा लें। फिर मैं किराया देता रहूँगा घर का, जितना वे कहें।"

रामदेव नहीं बोला तो छोटेलाल को थोड़ी निराशा होने लगी, धीरे से बोला—"और मेरे लिये कोई रास्ता नहीं है। नहीं तो फिर उसी मिडिल-पास से गाँठें जोड़ दूँगा प्रेमा की।"

÷ ÷ +

पर चाची न मानीं। रामदेव ने आकर साधारण भाव से सुना दिया कि—"वे कहती हैं, इतने रुपये मेरे पास नहीं हैं। दो-तीन सौ की अगर ज़रूरत हो तो इन्तज़ाम हो सकता है। घर-उर लिखने की ज़रूर नहीं है।"

छोटेलाल को धक्का-सा लगा, पर तो भी हँस दिया और बोला—"दो-तीन सौ से ब्याह हो जायगा सब!"

रामदेव चुप रहा। छोटेलाल गहरी साँस ली और उठकर भीतर चला गया।....

नहाना था उसे। धोती ढूँढ़ता रहा, नहीं मिली। प्रेमा रसोईघर में थी। उससे पुकार कर पूछा तो बोली कि भैया, मेरे सन्दूक में होगी। छोटेलाल ने उसका सन्दूक़ खोला और धोती उठाई कि किसी चीज़पर उसकी नज़र जा पड़ी। क्या है? उठा कर देखा और उसे हाथ में लिये प्रेमा के आगे आया और उसे दिखा कर पूछा कि—"यह कहाँ से आई, चाँदी की डिब्बी?" प्रेमा का चेहरा उतर गया। चाँदी की कामदार, सिन्दूर रखने की गोल डिब्बी सामने भैय्या अपने हाथ में लिये देख रहे हैं। हकला कर बोली—"चाची ने दी है—"

सुन कर छोटेलाल ने अचरज से कहा—"अच्छा!" और हँसी आ गई और डिब्बी फिर उसी जगह रख कर बोला मन ही मन कि—"इतनी उदारता कैसे आ गई चाची में!"

छोटेलाल खा-पीकर शहर को चला गया प्रेमा रसोईघर में ही थी और जाने क्या गुने रही थी कि किसी ने कहा—"देखना—"

चौंक कर प्रेमा ने सिर उठाया तो सामने रामदेव को खड़ा पाया। चेहरे पर लाली आ गई। रामदेव के हाथों काग़ज़ में लिपटा कुछ था। उसे वहीं धरती

पर रखकर बोला—"इसे उठा लेना।" और चप्पलों की आवाज़ करता चला गया।

प्रेमा अपने मन में धुकुर-पुकुर लिये उठकर आई। काग़ज़ के बंडल को खोल कर देखा—धोती थी एक, बहुत सुन्दर किनारी की। अवाक् निश्चल होकर देखती रही और फिर आँखों में आँसू छलछला आये।....कैसे इस भेंट को स्वीकार कर पायेगी? अभी भैया ने वह चाँदी की डिब्बी देखी है। अभी उसने झूठ बोला है। इस धोती को कहाँ छिपा कर रखेगी? यह 'स्नेह का दान' उसे लौटा देना होगा। ज़रूर लौटा देगी वह।

× × ×

ड्रिल मास्टर के बड़े भाई चुङ्गी में काम करते हैं उन्हें बीच में डाला गया और बात आगे को बढ़ाई। लड़के के पिता ने कहा कि—"टीका पाँच सौ, लगुन में पाँच सो—"आश्चर्य है, कैसे छोटेलाल ने सब कर लिया। आखिर निश्चय हो गया कि लड़का कालेज से आ जाये और आते ही टीका हो जाय। अगले महीने के बाद ब्याह की तिथियाँ हैं। चाहे जिस लग्न में हो जाय।

छोटेलाल सन्तोष की साँस खींच कर घर लौटा।....

चाची न सही और साहूकार तो हैं मक्खनलाल बनिये के यहाँ पैसा बढ़ गया है। चाहे तो सारे गाँव को खरीद ले। वह क्या छोटेलाल का घर और बगिया नहीं मोल ले सकेगा?

उन्हीं पिता के मित्र ठाकुर कल्याणसिंह के मार्फ़त बातचीत की। मक्खनलाल राज़ी हो गया। कुल चार हज़ार मिलेंगे। घर और बगिया और वह टपरियाँ, सब मोल ले लेगा।....घर जाय, बगिया जाय, टपरियाँ—कुछ परवाह नहीं है। जो कहीं वह किसी प्रकार प्रेमा को योग्य वर के हाथों सौंप सका, तो माँ-बाप की आत्मा स्वर्ग में सन्तुष्ट होगी। और अब छोटेलाल के जीवन कीकोई कामना नहीं है अपना भीख माँग कर खा लेगा, पेड़ तले सो रहेगा। प्रेमा को एक बार सुखी देख ले, उसकी मातृ-पितृ-हीन, अनाथ, मुरझाई कमल-कली-सी बहिन! उससे बढ़ कर भी छोटेलाल के लिये और कुछ है!....अकेली सूनी राह में चलते छोटेलाल के आँसू बहने लगे।....

रजिस्ट्री हो गई। घर, बगिया, टपरिया सब बिक गया चार हज़ार में!

....

दुलारसिंह दो साल से हाईस्कूल में फ़ेल हो रहा था। जगदीशशरण उसके साथ था। अब वह कालेज में पढ़ रहा है। उसने इण्टर दिया है इस साल और दुलारसिंह ने फिर वही हाईस्कूल।

उस दिन अचानक हीं शहर में दोनों की भेंट हो गई तो गले लिपट गये दोनों। फिर बड़ी बातें हुई! जगदीश बोला—"सुना है भाई, तुम्हारी शादी हो रही है!"

दुलारसिंह ने प्रसन्नता से कहा—"और तुम्हारी?"

जगदीश बहुत शरमीला है। लजाकर बोला—"सुना है कि टीका होने वाला है मेरा। तुम्हारे गाँव के कोई—"

दुलारसिंह ने भारी प्रसन्नता से कहा—"हाँ, मास्टर हैं वे—उनकी बहिन है। मिडिल तक पढ़ी है, खूब योग्य है, खूब सुन्दर है।"

जगदीश ने शरमा कर पूछा—"तुमने देखा है उसे?"

"हाँ," बोला—"बहुत बार। वह बहुत ही अच्छी लड़की है—बहुत सुन्दर है, बहुत! गुलाब के फूल-सा रंग है।"

जगदीश ने प्रसन्नता को दबा कर कहा—"अच्छा। और क्या जानते हो उसके विषय में?"

दुलारसिंह ने कहा—"पूछो कोई बात।"

जगदीश ने कहा—"ज़रा और पता चलाना। शील, स्वभाव, चरित्र यह सब।"

दुलारसिंह के ओठों पर कोई बात आई और रुक गई। बोला—अच्छा, और पता लगा लूंगा।"....

....ठीक उसी समय, यहाँ छत की आँड़ में खड़ी प्रेमा ने वह कागज़ का बंडल रामदेव के आगे कर दिया।

बहुत अचरज-सा लगा उसे और त्रस्त स्वर में पूछा—"क्यों? क्या बात हुई? इसे क्यों लौटा रही हो?"

प्रेमा ने क़ातर वाणी से कहा—"बात कुछ नहीं है। तुम इसे ले लो—"

रामदेव ने कहा—"हरगिज नहीं, तुम कारण बताओ, आखिर क्यों नहीं ले सकोगी। मैं नहीं जान सकता?"

प्रेमा ने धीरे से कहा—"बात कुछ नहीं है—"

रामदेव को बहुत दुःख लगा। उसने कहा—"प्रेमा, मेरे हृदय पर आघात करते तुम्हें दया नहीं लगती? इतनी निष्ठुरता कहाँ से सीख ली—" कहते-कहते रामदेव का गला भर आया। उसी भरे गले से बोला—"मेरी दी हुई कोई चीज अब स्वीकार नहीं करोगी! अब तुम्हें मैं कोई 'स्नेह की भेंट' देने का भी अधिकारी नहीं रहा!"

प्रेमा की आँखों से टप् करके आँसू की दो बूदें गिर गईं। सिर नत किये खड़ी थी और हाथ में वह बंडल था।

रामदेव ने शान्त होकर कहा—"लाओ—"

पर प्रेमा ने हाथ नहीं बढ़ाया। रामदेव खड़ा देखता रहा। प्रेमा उसी तरह सिर नत किये, आँसू गिराती चली गई। धोती उसने रामदेव को नहीं दी।

....

रात को मदरसे की इमारत में सारा गाँव इकट्ठा हुआ। एक ओर औरतों का भी इन्तज़ाम था। रामदेव ने मेज़ लगवा कर सामने सफ़ेद दीवार की ओर सबसे देखने को कहा। फिर उसने लाइट् डाल कर 'मैजिक लालटेन' से तसवीरें दिखाई और अनजान आदमियों को समझाया कि किस तरह गन्दगी से कीड़े पैदा होते हैं, और किस तरह बीमारियाँ फैलती हैं—छूत लगती है और लोग तबाह होते हैं। फिर सफ़ाई के प्रयोग दिखाये।

गाँववाले बहुत प्रभावित हुये और आश्चर्य प्रकट करते अपने-घरों को लौटे। धीरे-धीरे भीड़ छँटी और रामदेव सब सामान एक मुदर्रिस को सौंप कर इधर आया। प्रेमा अकेली खड़ी थी थमले की आड़ में और सभी औरतें चली गई थीं। रामदेव ने धीरे से कहा—"चलो।" और प्रेमा उसके पीछे-पीछे चल दी। .... कुँये के नीचे से राह है सँकरी-सी। उसमें भी किसी भले आदमी ने पानी बहा दिया था। रामदेव आगे था। उसकी चप्पल 'छप' से कीचड़ में हुई, तो पीछे को हट गया और प्रेमासे कहा—"आओ, इधर से आओ।"

कल्याणसिंह के मकान के पीछे एक खेत था। उसी के किनारे-किनारे यह दूसरी राह थी। अँधेरी छाई थी और कुछ सूझ नहीं रहा था। प्रेमा वार-वार फिसलने लगी तो रामदेव ने कहा—"मेरा हाथ पकड़ लो।" प्रेमा ने हाथ पकड़ लिया और डग-मग होती चलने लगी।····

वही मजूरा बैलों को सानी देने आया था। लालटेन लेकर और दूर से उसने दोनों को देखा—हाथ पकड़े तो लालटेन रख कर भागा। दुलारसिंह चौपाल पर किसी से हँस रहा था मजूरा उसका हाथ पकड़ कर विना कुछ वोले खींच ले गया उधर और जरा आड़ से दिखाया हाथ उठाकर कि—"अपनी आँखों से तुम खुद देख लो!"

दुलारसिंह ने आश्चर्य से देखा—खेत कीं मेढ़ घर सुनसान राह में कोई प्रेमा का हाथ पकड़े वढ़ा चला जा रहा है प्रेमा उससे सटी है अँधेरा है, सुनसान राह है, दो स्त्री-पुरुष हाथ में हाथ थामे सटे-सटे चले जा रहे हैं, पतली-सी मेढ़ पर।

÷ ÷ ÷

कालेज से उस लड़के के आने की खवर मिल गई तो फिर उसी दिन छोटेलाल रामदेव को साथ लेकर शहर आया। ड्रिल-मास्टर के भाई को भी साथ लिया और चुङ्गी के क्लर्क साहव के घर पहुँचे। बड़ी ख़ातिर की बातें हुई क्लर्क साहव के पुत्र जगदीशशरण को बुलाया गया। छोटेलाल ने उसका वह शील-संकोच देखा तो गद्‌गद् हो गया—कैसा देवस्वरूप है!

मंगल को शुभ दिन था। मंगल को ही टीका चढ़ाने का निश्चय हुआ और छोटेलाल उस समय ज़बरदस्ती से जगदीशशरण के हाथ पर दस रुपये रख कर हाथ जोड़ कर चला आया।

ड्रिल-मास्टर के भाई अपने घर गये और ये दोनों गाँव को लौटे। आज छोटेलाल को जाने कितना उत्साह था। चलता-चलता वार-वार छाती तान लेता और मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करता—'मेरे रक्षक तुम्हीं हो।' और मेरा कौन है! इस काम को पूरा करना भगवान्! मैं अनाथ हूँ और मेरी वहिन अनाथ है।'

पर रामदेव विलकुल शान्त भाव से चला आ रहा था। वह जाने क्या सोच रहा था।

सहसा छोटेलाल ने चलते-चलते उसकी ओर देखा, और मुसकरा कर पूछा—"कैसा है लड़का ?"

रामदेव ने उसी शान्ति से कहा—"वहुत अच्छा है।"

फिर थोड़ी देर चुप्पी रही। फिर रामदेव ने प्रश्न किया चलते-चलते कि—"रुपयों का क्या प्रवन्ध करोगे ?"

छोटेलाल ने धीर भाव से कहा—"रुपयों का प्रवन्ध कर लिया है।"

"रुपयों का प्रवन्ध हो गया !"—रामदेव सफ़ेद चेहरे से वोला—"कहाँ से मिला ?"

छोटेलाल ने धीर भाव से कहा—"मैंने घर-बाग़ वेंच दिया है—"

÷ ÷ ÷

मंगल को 'टीका' चढ़ाना था। सनीचर-इतवार दो दिन काट कर सोमवार को छोटेलाल टीका का सामान खरीदने शहर गया। स्कूल से छुट्टी ले ली थी। दिन भर सामान खरीदने में लगा दिया। हलवाई को लड्डुओं के रुपये देकर सड़क पर उतरा तो धूप चली गई थी।

वह सब सामान ड्रिल-मास्टर के घर रखने आया तो वे ड्रिल-मास्टर के भाई मिल गये। उन्हें सब चीज़ें खोल-खोल कर दिखलाई तो ऐसा लगा कि सकपका रहे हैं।

वात क्या है ?—अन्त में, उन्होंने छोटेलाल से रुक-रुक कर कहा कि—वलर्क साहव टीका नहीं चढ़ायेंगे।"

छोटेलाल को मानो किसी ने आसमान से नीचे ढकेल दिया। क्षण भर के लिये जैसे वह नहीं रहा। फिर वहुत संयम करके उसने पूछा—"क्यों ?"

उत्तर वहुत भयानक था। छोटेलाल का चेहरा लाल हो गया तत्क्षण और वह क्रोध से काँप कर वोला—"कहनेवाले की जीभ निकाल लूंगा ! किसने कहा है ?"

ड्रिल मास्टर के भाई उसका यह भाव देख कर डर गये। शान्त स्वर से वोले—जगदीश से किसी ने कहा है। और उसी ने ज़िद की है कि मैं यह शादी नहीं करूँगा।" और फिर उन्होंने एक दस रुपये का नोट निकाल कर छोटेलाल के आगे रख दिया और वोले—"यह उन्होंने आप के रुपये लौटाये हैं—"

छोटेलाल के आगे अंधेरा छा गया ।....

÷ ÷ ÷

—यह उसी रात की बात है। छोटेलाल के घर की बाँयी ओर की तिदरी इस बरसात में टूट गई थी, खँड़हर हो गया था उधर। जब रात आधी से ज्यादा खिसक गई तो उसी खँडहर के बीच से एक छाया-मूर्ति लुकती-छिपती आँगन के किनारे आ खड़ी हुई ओर फिर पैरों की चाप छिपाये प्रेमा की खाट के पास आ पहुँची। छोटेलाल की नींद मशहूर है। कान पर ढ़ोल बज रहे हों तो भी सोता रहेगा। वह उधर को करवट लिये सो रहा था। छाया-मूर्त्ति ने प्रेमा का हाथ झख-झोरा तो वह घबराकर चिल्लाने को हुई, फिर अचानक उस मुख को देख कर शान्त हो गई। कलेजा धड़कने लगा। रामदेव ने इशारे से कहा—उठ आओ! प्रेमा सँभल कर उठ आई। तिदरी की आधी दीवाल रह गई थी एक ओर। उसी के नीचे दोनों आ खड़े हुये। प्रेमा की देही थर-थर काँपने लगी। देखकर रामदेव ने उसका हाथ पकड़ लिया अपने हाथ में और बहुत धीरे से कहा—घब-राओ मत!"

प्रेमा जैसे थोड़ी स्थिर हो गई। रामदेव ने उसे अपने पास बैठा लिया और पागलों की तरह उसका एक हाथ अपनी छाती के पास दाब लेकर करुणा-भरी आवाज़ से बोला— प्रेमा!"

प्रेमा काँपती बैठी थी। क्या वह स्वप्न देख रही है?

रामदेव कातर होकर बोला—"भैय्या ने तुम्हारा ब्याह ठहराया है। कल टीका चढ़ाने जायेंगे—"

प्रेमा काँपती बैठी थी। क्या वह स्वप्न देख रही है?

रामदेव ने कातर होकर पुकारा—"तुमने सुना है?"

प्रेमा के कलेजे पर जैसे कोई बहुत भारी हथौड़े से चोट मार रहा हो। बैठी रही थर-थर काँपती।

रामदेव बहुत धीरे से बोला—"शायद अगले महीने में ही तुम्हारी शादी हो जायेगी।"

—शादी हो जायगी!

प्रेमा गुम-सुम बैठी थी। रामदेव का स्वर बहुत कातर हो गया था। बोला—"कभी तुमसे कहा नहीं था। अब कहे बिना गुज़ारा नहीं है। मैंने तुम्हें मन में बसा लिया है प्रेमा! कब से मैं तुम्हें प्यार करने लगा था, याद नहीं आता। शायद जिस दिन से होश सँभाला तभी से, शायद उस जन्म-जन्मान्तर से। आज तक तुम्हें जी खोलकर प्यार करता रहा हूँ। पर जो आशंका थी, वह सामने आ गई। तुम्हारी शादी हो रही है—अब क्या होगा?"

प्रेमा गुम-सुम बैठी थी। रामदेव उसी तरह बोला—"मैं पागल हो गया हूँ, एक क्षण के लिये शान्ति नहीं आती—लगता है, कलेजे के भीतर भट्ठी दहक रही है!"

आवेश में रामदेव कह गया! उसकी स्थिरता, दृढ़ता, चरित्र-बल, विद्या-बुद्धि सब जैसे लुप्त हो गया। सामने दीख रहा था केवल विवाह-मंडप। एक बहुत ही साधारण सूरत-शकल के लड़के की बग़ल में प्रेमा बैठी है—उस लड़के ने प्रेमा का हल्दी से रँगा हाथ थामा है!....

प्रेमा को लगा कि जैसे वह कोई स्वप्न देख रही है।

उसने घबरा कर एक बार चारो ओर देखा—निशीथ का अन्धकार सारे विश्व पर काली चादर डाले सो रहा था। यह सामने तो खड़े हैं चिर स्नेही, यह उसका हाथ थामे हैं अपने हाथ में। हाय, क्या सब सत्य है!

क्या वह पागल हो गई है?

रामदेव उसी तरह बोला—"अब केवल एक ही रास्ता बाक़ी है।"

जाने किसने प्रेमा से बुलवा दिया, काँपती ज़ुबान से पूछा—"क्या?"

रामदेव उसी तरह बोला—"मैं कल भैय्या से साफ़-साफ़ कह दूँ—"

—साफ़-साफ़!

—साफ़-साफ़ क्या कहेंगे!

प्रेमा सुध-बुध खोये थी। रामदेव उसी आवेश में बोला—"कह दूँ कि मैं प्रेमा से शादी करूँगा—"

प्रेमा को जैसे किसी ने फूलों के ऊपर फेंक दिया हौले से। फिर सब देही काँप उठी।

रामदेव ने उसके थर-थर काँपते हाथ को और कस कर पूछा—"कहूँ भैय्या से ?"

जाने किसने प्रेमा से कहलवा दिया, काँपती जुबान से बोली "हाँ।"

रामदेव को जैसे बहुत तसल्ली हुई। उसने एक-एक कर कहा—"सिर्फ़ एक बात और जानना चाहता हूँ—"

"क्या ?"—काँपती जुबान से पूछा।

करुणा-प्रार्थी के स्वर में बोला—"तुम मुझसे शादी करने को तैयार हो ?"

प्रेमा नहीं बोल पाई। रामदेव बहुत विकल होकर बोला—"कहो प्रेमा, एक बार तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।

तब प्रेमा ने अँधेरे में लजाकर बहुत हौले से इतना ही कहा—मेरे प्राण तुम्हारे हैं। "मेरा तन-मन तुम्हारा है—" और फिर दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया अपना।

× × ×

ज्यों ही प्रेमा ने खँडहर से बाहर पैर दिया कि भैय्या को खड़ा पाया सामने।

प्रेमा को काटो तो खून नहीं ! वहीं खड़ी रह गई और टाँगे काँपने लगीं उसकी।

छोटेलाल ने गम्भीर स्वर में पूछा—अभी तू किससे बातें कर रही थी ?"

धक् रह गई। कोई जबाब नहीं है। काँप रही है वह।

छोटेलाल ने स्वर को तनिक चढ़ा कर कहा—"बोल, कौन था ?"

हाय, क्या बतलाये !—और जोर से काँपने लगी।

छोटेलाल स्वर को तीव्र करके चिल्लाया—"मैं क्या पूछ रहा हूँ बोलती क्यों नहीं ? किससे अभी तू बातें कर रही थी ? कौन था ?"

हाय काँप रही है वह थर-थर।

"बोल !"

"बोलती नहीं !"

"बोल ?"

हाय—हाय हाय !

छोटेलाल ने उसका हाथ पकड़ कर निर्दयता से खींच लिया और उसे दीवार पर ढकेल कर पूछा—"तुझसे कौन मिलने आया था ? कौन था ?"

पर प्रेमा की जुबान न खुली। वह मानो बेहोश हो गई है।

छोटेलाल एक क्षण रुका—उसके मस्तिष्क में वह ड्रिल-मास्टर के भाई की बात आई, वह चाँदी की डिब्बी याद आई और सामने खँड़हर से निकली प्रेमा को देखा।

तब क्या वह बात सत्य है ? क्या सचमुच उसकी बहिन चरित्रहीन है ? सच ! सच !!

छोटेलाल के सिर को जैसे किसी ने ज़ोर से झटका दिया। क्षण भर में सारी ममता, सम्पूर्ण प्यार और स्नेह काफ़ूर को गये। सामने खड़ी थी—एक कलंकिनी !

छोटेलाल ने जल्लाद की तरह उसकी गरदन पर अपना पंजा जमा दिया और दानव के स्वर में बोला—"तेरा गला घोट दूँगा मैं !

पर प्रेमा की जुबान न खुली। वह मानो बेहोश हो गई है।

छोटेलाल ने हाथ का पंजा उसके गले पर दबाया और दाँत पीस कर बोला—"बोल ! उस पापी का नाम बता, नहीं तो अभी जान ले लूंगा ! बोल !"

—पापी !

पर प्रेमा की जुबान न खुली। वह मानो बेहोश हो गई है।

छोटेलाल ने अपना बोध खो दिया, बुद्धि खो दी। दानव की तरह अपनी उस सुकुमार बहिन की गरदन को दोनों हाथों से दबाने लगा ज़ोर लगा कर और दांत पीस कर बोला—"नहीं बतलायेगी कलंकिनी, नहीं बतलायेगी !"

—कलंकिनी !

पर प्रेमा की जुबान न खुली। वह मानो बेहोश हो गई है।

तब दानव की शक्ति से बहिन के कण्ठ पर अँगूठा दबा कर छोटेलाल चिल्लाया—"मैं तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।

—कि खट् से किसी ने छोटेलाल का कन्धा पकड़ लिया पीछे से और चिल्लाकर कहा—"छोड़ दे हत्यारे, छोड़ जल्दी !"

छोटेलाल ने प्रेमा की गरदन से हाथ हटाकर मुँह फिराया तो सामने चाची

खड़ी काँप रही थीं। काँपती जुबान से बोली—"हाय राम, जान ले लेता तू तो अभी लौंडिया की! राक्षस हो गया क्या? यह तुझे हो क्या गया बेटा?"

छोटेलाल को मानो इतनी देर में चेतना लौटी। रुदन भरे कंठ से बोला—"चाची यह अपराधिनी है—'

चाची ने जोर से कहा—"वह हरगिज अपराधिनी नहीं है। अपराधी तो वह खड़ा है तेरे पीछे। उसकी जान ले ले और मुझे भी मार डाल निर्दयी—सब को मार डाल!'

छोटेलाल ने बायीं ओर सिर घुमाया तो रामदेव खड़ा था प्रस्तर की मूर्ति बना। घड़ी भर को सन्नाटा छा गया।

चाची वहीं जमीन पर सिर पकड़ कर बैठ गयीं और धीमे स्वर में कहने लगीं—"अरे बेवकूफ़ों, अपने आप सब करते रहे और मुझ से न कहा कुछ। दुनिया भर की खाक छानता फिरा, घर-द्वार बेंचेगा और भिखारी बनेगा, पर छोटेलाल तू एक बार मुँह खोल कर यह न कह सका कि—चाची, तुम ले लो इस प्रेमा को! एक बार कह कर तो देखता! मैं तो इन्तजार ही करती रही, कहता कैसे तेरी इज्जत जो घट जाती! और तू! पढ़ा-लिखा गधा, तू ने क्यों न कहा मुझसे कि—माँ, मैं प्रेमा को—' कहते-कहते चाची का गला भर आया, भरे गले से फिर कहने लगीं—'मेरी यह प्रेमा तो देवता की माला का पावन फूल है। हाय, मेरी बेटी अभी तुम दोनों के कारण अपने प्राण दे देती, निश्चय ही प्राण दे देती लाजवन्ती, तब क्या होता भगवान्।'

और तब अचानक ही प्रेमा की ओर नजर गई चाची की और 'हाय मैया! कह कर झपटीं वह।

गश आ गया था प्रेमा को और जाने कब जमीन पर लुढ़क गई थी मुरझाई कली की तरह।

—चाची ने प्रेमा को अपनी गोद में भर लिया।

× × ×

रामदेव कभी मेरा सहपाठी रहा था।

अचानक लखनऊ में जब उससे मेरी भेंट हो गयी तो वह ज़िद करके मुझे

अपने डेरे पर खींच ले गया। वहीं मैंने रामदेव की जीवन संगिनी प्रेमा के प्रथम दर्शन पाये। दोनों सुन्दर हथेलियाँ जोड़े पलकें झुकाये, ओठों पर हलकी-सी मुस्कान लिये उसका वह 'नमस्ते' कहना मेरे मन को बहुत भाया। बहुत-बहुत मधुर और मनोहर लगी उन दोनों की जोड़ी।

कथा-प्रसंग में, मैंने रामदेव से खुशी-खुशी पूछा बच्चे? तुम लोगों का प्रोडेक्शन?

रामदेव ने हंस कर कहा—'अभी कुछ नहीं। औलाद के बारे में इनका कहना है कि—' रामदेव अपना वाक्य पूरा न कर पाया कि प्रेमा फ़ौरन उठकर भीतर भाग गई। हम दोनों बड़ी देर तक बैठे हँसते रहे।

....रामदेव से सुनी यह कहानी, प्रेमा का सौम्य शान्त स्निग्ध व्यक्तित्व और और सन्तान चर्चा पर उसका वह अकुलाकर भाग जाना—मुझे बहुत दिनों तक याद आता रहा।

....यह चालीस बरस पहिले की कहानी है। तब से गंगा में न जाने कितना जल बह गया। लगता है, शायद उसी जल के साथ लज्जा-शील-संकोच और शालीनता के वे सारे भाव बह गये। प्यार का रूपान्तरण हो गया। चरित्र की परिभाषा बदल गई मन बदले, हृदय बदले, विचार बदले और मान्यतायें बदल गयीं। सभी कुछ बदल गया।

परन्तु मानव मात्र के लिये जो चिरन्तन सत्य है, शिव है, सुन्दर है—वह नहीं बदला। कभी बदलेगा भी नहीं—यही विश्वास रखना चाहिये

★

क़र्ज़

सालें हुईं, नगला के ठाकुर हरीसिंह ने मनौली के ठाकुर प्रतापसिंह से कर्ज़ लिया था लड़की की शादी में। हरीसिंह एक दिन मर गये और प्रतापसिंह भी न रहे। दोनों का स्थान पुत्रों ने ले लिया, लेकिन कर्ज़ वह बना रहा और अब सूद-दर-सूद मिलाकर पच्चीस हज़ार से भी ऊपर जा पहुँचा था। इसी सम्बन्ध में, प्रतापसिंह का बेटा विनोद हरीसिंह के बेटे गजराज के पास आया हुआ था और यहीं से यह कहानी शुरू होती है।

भोर की बेला विनोद को जगाकर गजराज अपना बड़ा-सा बाग़ दिखाने ले गया था। उसका कहना था—कर्ज़ में यह बाग़ विनोद ले ले, नक़दी देने को उसके पास कुछ नहीं है फ़िलहाल।

बाग़ से लौटते-लौटते सूरज चढ़ आया। बारहदरी में पलंग पड़ा था। थका-माँदा विनोद उसी पर आ लेटा और आँखें मूँद लीं घड़ी भर को कि जाने किधर से एक बहुत ही मधुर गुंजन बहता आया यहाँ तक, तो विनोद ने चौंककर आँखें खोल दीं। बचपन से ही संगीत से लगाव रहा था उसका और सितार बहुत अच्छा बजा लेता था वह। गजराज भीतर से लौटा, तो उसने फ़ौरन ही जिज्ञासा की—"कौन गा रहा है?"

"मेरे चरवाहे की बेटी है। हवेली में झाड़ू लगाने आती है। क्यों क्या हुआ?" गजराज ने थोड़े अचरज से पूछा।

"उसे बुलाओ तो जरा।" विनोद अपने को संयत न रख सका।

और एक चौदह-पंद्रह साल की लड़की सकुचाती-शरमाती, गन्दे कपड़ों में मालिक के सामने आ खड़ी हुई। विनोद ने एक बार आँखें भरकर उसे देखा तो दंग रह गया।

ऐसी धूप-छांही उमर, ऐसी सलोनी-सलोनी मुखश्री, ऐसी मासूम-सा चम्पई रंग। पलकें गिराये, थमले से सटी खड़ी थी।

"इससे गाने को कहो। क्या गा रही थी, फिर गाये।"

लड़की बहुत शरमायी, लेकिन मालिक का आदेश टाल न सकी, उसे गाना ही पड़ा, वही गीतः—

'ऊधो, घनश्याम लिखौं पतियाँ,
इक घन गरजैं, दूजे रस बरसे,
तीजे बोलत मोर- फटैं छतियाँ....'

और एक करुण स्वर-लहरी वह गयी बारहदरी के बीच। उस गीत-ध्वनि से विभोर होकर विनोद ने एक बार फिर लड़की की ओर भरपूर नज़रों से देखा। गाना रुक गया था। लड़की के शुभ्र ललाट पर पसीना छलछला आया था। पलकें गिराये मौन बैठी थी।

'क्या नाम है तेरा?" पूछा गया तो हौले, से शरमाती बोली, "रूपकला।"

रूपकला चली गयी, तो विनोद ने आतुर स्वर में कहा,—"फ़िलहाल मैं कर्ज की बात बन्द कर रहा हूँ। जब तुम्हें सहूलियत हो, धीरे-धीरे देते रहना। न दे सको तो भी नालिश न करुँगा कभी। मेरी सिर्फ़ एक शर्त है- यह लड़की मेरे साथ कर दो। रूपकला को मुझे दे दो! बोलो, इसे मेरे साथ भेज सकोगे?"

गजराज ने खुश हो कर कहा—"इसका बाप कर्ज़दार है मेरा। कर्ज़ में ही सारा काम करता है, यह लड़की भी समझो कर्ज़ में ही है।"

"इसके बाप का कर्ज़ तुम मेरे खाते में काटो। पाँच सौ मैं और दूँगा उसे।" विनोद ने आकुल उत्कन्ठा से पूछा—"अब तो मेरे साथ जायेगी न?"

"ज़रुर जायेगी।" गजराज ने ज़रा-सा हँसकर कहा, "लेकिन दोस्त—नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।"

विनोद सिर झुका गया। उसने धीरे से कहा—"तुम नहीं समझ सकते। तुम नहीं जानते।"....

रूपकला मनौली आ गयी। यहाँ आकर जीवन ही बदल गया उसका। विनोद ने उसे बगीचे वाली आलीशान कोठी में रखा, हवेली से दूर और सेवा के लिए एक दासी नियुक्त कर दी। रूपकला की सुकुमार देह को सजाने के लिए रंग-बिरंग रेशमी वस्त्रों के अंबार लगा दिये, सुन्दर आभूषण बनवाये। सुस्वादु भोजन के लिए, घी-दूध के लिए ताकीदें की दासी को। और रूपकला को संगीत

में पारंगत करने के लिये, हमेशा के साथी सितार में संगत करने वाले अपने जिगरी दोस्त रमज़ान को लगाया। सारे दिन उस्ताद के साथ बैठी रूपकला "रियाज़" करती रहती। जाने कितने संस्कार लेकर जन्मी थी वह कि आनन-फानन में सीखती चली गयी, ठुमरी और दादरा, देश और मल्हार, ध्रुपद और भूपाली। खुद रमजान दांतों तले उँगली दाव गया रूपकला की प्रतिभा देखकर। एकान्त पाता तो सिर हिला-हिलाकर कहता—वाहरे पारखी, धूल में से हीरा खोज लाये हैं, सरकार हीरा।"....

....साँझ डूब जाती तो सरकार यहाँ आते। रूपकला रोज़ किवाड़ों के पास खड़ी रहती मुग्धा-नायिका की तरह। सरकार सीढ़ियों पर चढ़ते दीखते तो उसके भोले चेहरे पर जैसे चमक आ जाती। सिर झुक जाता आप ही आप, नज़रें सरकार के क़दमों को चूमने लगतीं और मेंहदी से रँगी छोटी-छोटी हथेलियाँ जोड़ देती।

विनोद उसकी पीठ पर थपथपाकर मखमली क़ालीन पर जा बैठता और अपना सितार उठा लेता। बायीं ओर रमज़ान रहता तबले की जोड़ी लिये और सामने बैठी रूपकला, रंगीन रेशमों में लिपटी-कला की साकार मंजुल प्रतिमा।

सितार झनझनाकर, अपने इष्टदेव को स्मरण करके रूपकला की ओर निहार कर मुस्कान भरे होठों से आदेश देता विनोद—"आओ रूपकला, स्तुति...."

और रूपकला हौले-हौले, मीठे-मीठे गाती—

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई रे!"

और फिर नये सीखे किसी 'राग' की तान छेड़ती—किसी नयी रागिनी के 'सुर' उचारती तल्लीन होकर। आत्मविभोर-सा विनोद नयन मूंदे सितार झन-झनाता रहता, रमज़ान तालों के बीच थिरकता रहता और रूपकला के मधुर कंठ से झर-झर करके रस-वर्षण होने लगता। उस वर्षा से मानों विनोद का तन-मन भींग जाता, उँगलियाँ अत्यन्त द्रुतगति से तारों पर नाचने लगतीं और रमज़ान पुलकित होकर सजल आँखों से रूपकला की ओर निहारता, पुकार उठता हौले-से "वाह-वाह-वाह!" और रूपकला अपनी सुध-बुध खो देती।

धीरे-धीरे रात बीतती जाती, चन्दा-तारे चलते-चलते थक जाते तो रूपकला

उनींदी होकर अधखुली आँखों से कहती—'नींद....' और मधुर मुस्कान के बीच धीरे से गुनगुनाती—"निंदिया लागी, दैय्या, निंदिया लागी! निंदिया लागी—मैं सोय गई राजा रे, निंदिया लागी!"

साज रुक जाते। रमजान उठ जाता और विनोद बिना एक शब्द बोले रूपकला की बाँह पकड़कर अपने पास खींच लेता।

....रूपकला जब आयी-आयी थी, विनोद यहाँ नहीं सोता था। रसकला को सुलाकर वह रात में ही हवेली को लौट जाता था। रूपकला की कहानी पत्नी चम्पा से ज्यादा दिन छिपी न रही। जिस दिन उसने जाना था, उस रात जब विनोद हवेली में पहुँचा और मशहरी पर लेटने लगा तो ठकुरानी ने आवेश भरे स्वर में कहा—"यह मेरी 'सेज' है—क्षत्राणी की शैय्या है। यह किसी 'रंडी' की नहीं। इस सेज पर पैर रखने वाला डोमनी-चमारिन का वग़लगीर नहीं हो सकता। मैं भूखी रह जाऊँगी, मैं डोम-चमार की 'जूठन' नहीं खाऊँगी हरगिज़!"

विनोद ने ज़ुबान नहीं खोली। मशहरी से—उठ बैठा वह और पैरों में जूते डालकर हवेली के बाहर हो गया। तमतमाया चेहरा लिये युवती ठकुरानी खिड़की से देखती रही।....

ढलती निचाट रात में बेखबर सोई रूपकला साँकल की अविराम खड़खड़ाहट से जाग उठी। घबराकर उसने किवाड़ खोले तो क्लान्त चेहरा लिये सरकार सामने खड़े थे।

विनोद ने रूपकला से भी एक शब्द न कहा। किवाड़ खुद बन्द कर लिये भीतर से और रूपकला की खाट पर लेटा रहा। रूपकला खड़ी रह गयी तो उसने बाँह पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया।....

तब से फिर रातें और भी नशीली हो गयी थीं। हर रात आती और हजार-हजार शमादान जल उठते, मजलिसें आबाद हो जातीं, गुलाबी रंग बरसता और रसकला की 'चूनर' भीग-भीग जाती। भीगी चूनर पहने, लाज से अधमरी राधा मानों घने कुञ्जों के बीच अपने को छिपाती फिरती, परन्तु हाय, कोई उसे इसी हालत में आ पकड़ता और चिबुक छूकर प्यार से कहता—"इधर देख गोरी!"

हर रात को नये सुर-संधान होते, नयी तालें लगतीं, नये तार झनझनाते मानों और ध्वनि की देवी, स्वर की जादूगरनी रूपकला अपने कण्ठ से किसी राग को साकार कर देती—कोई रागिनी कोठी के उस कमरे में सामने आकर खड़ी हो जाती। रात के करुण सन्नाटे में रूपकला की छेड़ी हुई मूर्च्छना रुनझुन करके नाचने लगती सरकार के आगे, तो रमज़ान धीरे से कहता तबले पर थाप देता—"मीड़ लगाओ।" और रसकला साधक की भाँति साँस रोककर मीड़ लगाती और तब झर-झर कर मानों रस बरस जाता चारो ओर। तबले पर थाप लगाते रमज़ान मानों नशे में कहता, "अलाप लो।" और रसकला कामधुर स्वर मानों नक्षत्रों तक गूँज जाता और चाँद-सितारे अपनी राह भूल जाते।....

....इस तरह जब ऐसी तृप्तियों भरी और प्यासों भरी, गीतों भरी और रसोंभरी जिन्दगी रूपकला बिता रही थी सरकार के आग़ोश में, तब एक शाम को जाने कहाँ से एक अनजान नौजवान आया कोठी के फाटक पर धरना देकर बैठ गया।

सरकार अपने समय से आये। नौजवान ने लपककर उनके चरण छू लिये, फिर हाथ जोड़े, विनती के स्वर में बोला—"मुझे अपनी ग़ुलामी में रख लीजिये। मालिक, आपका नाम सुनकर बड़ी उम्मीदें लेकर आया हूँ। दुनिया में मेरा कोई नहीं है, हुज़ूर! बिलकुल बेसहारा हूँ, ग़रीब निवाज़!

विनोद ने घड़ी भर सोचकर कहा—"रात को जाग सकते हो? मुझे एक हिम्मत वाले पहरेदार की ज़रूरत है। यह काम कर सकते हो तुम?"

नौजवान हाथ जोड़े बोला—"हुज़ूर जहाँ हुकुम होगा, सारी रात खड़ा रहूँगा। मेरी जान चली जायेगी तब हुज़ूर पर आँच आयेगी। गंगा मैया की सौगन्ध।"

"अच्छी बात है।" विनोद ने बीच में ही कहा—"तुम आज से ही समझो, काम पर बहाल हुये। देखो इस कोठी के ऊपर टीन में रहोगे और रात को वहीं छतो पर घूमते पहरा दोगे, चारो ओर नज़रें रखोगे। कोई खतरा हो तो दौड़कर नीचे मुझे खबर दोगे। नाम क्या है तुम्हारा?"

"जगपाल नाम है, सरकार!"

और जगपाल यों पहरेदार हो गया कोठी का। उसे वर्दी मिली। भाला

मिला बड़ा-सा और जब उसने बतलाया कि—निशाना लगाना जानता है—दुश्मन को गोली मार सकता है तो एक बन्दूक और कारतूस की पेटी भी दे दी गयी उसे।

""दूसरी रात से ही वह कोठी की छत पर खड़ा होकर पहरा देने लगा। सारी रात जागता और पौ फटने लगती तो अपनी टीन में गुड़ीमुड़ी होकर सो जाता। कब वह सोकर उठता, कब ईंटों के चूल्हे पर दो रोटी सेंक कर खा लेता—कोई नहीं जानता। न तो वह कभी हवेली में गया और न कभी किसी ने उसे कस्बे में घूमते ही देखा। किसी से बोलता-चालता ही न था, किसी से मिलता ही न था कभी।

सर्दी-गर्मी-बरसात बारी-बारी आयीं, लेकिन पहरेदार ने एक दिन भी अपनी ड्यूटी न छोड़ी।

उसी तरह हर रात को नीचे कोठी में रूपकला के स्वर गूँजते रहे, सरकार का सितार झनझनाता रहा, रमज़ान का तबला ठनकता रहा और हर रात वे आवाज़ें सुनता जगपाल ऊपर छतों पर टहलता, अँधेरे में दहाड़ता रहा—"जागते रहो!"....

रूपकला के सामने वह कभी न आया। रूपकला ने पहरेदार को कभी अपनी आँखों से न देखा। वह केवल इतना जानती थी कि सरकार ने उसकी हिफ़ाजत के लिये किसी पहरेदार को रख दिया है।

मुश्किल से तीन-चार बार सरकार से मुलाक़ात हुई उसकी। सरकार हमेशा पूछते—"कहो भाई जगपाल, कोई तकलीफ़ तो नहीं है तुम्हें ?"

और पहरेदार हाथ जोड़ कर कहता—"आपकी दया है मालिक बड़े मजे में हूँ।"

और यों पहला साल बीत गया। तो एक रात कोठी के उपर से जोर की आवाज आयी—"ठाँय!"

गीत रुक गया रूपकला का और विनोद तडित्‌वेग से जीने की ओर भागा पीछे-पीछे रमज़ान दौड़ा।

ये दोनों छत पर पहुँचे हाँफते-हाँफते तो जगपाल बड़ी शान्ति से अपनी

बन्दूक मोड़कर कारतूस का खोल झाड़ रहा था और हलका-हलका धुआँ उठ रहा था नली से।

"क्या हुआ ?"—विनोद ने आकुल कण्ठ से पूछा, तो जगपाल जरा-सा हँसकर शान्त स्वर में बोला—"कुछ नहीं सरकार, गीदड़ था कोई। भगा दिया मैंने। तुम क्यों परेशान हुये सरकार, पहरे पर तुम्हारा सेवक जगपाल है तो तुम्हें काहे की चिन्ता ? जाओ सरकार, रस-भंग न करो अपना।" और उसने जाने का इशारा करके हाथ जोड़े। विनोद और रमजान दोनों चुपचाप नीचे कमरे में चले आये।....

"बड़ा शानदार आदमी रखा है आपने !"—रमजान ने तबला सम्भालते हुये कहा। विनोद को अच्छा लगा, हँसकर बोला—"मेरा चुनाव कभी ग़लत नहीं होता मियाँ !" और रूपकला की ओर ताककर हँसने लगा। रूपकला ने लजाकर गरदन झुका ली। पर रमजान न माना डुगडुगी की तरह अपना भारी खोपड़ा हिलाकर कहने लगा—"इसमें क्या शक है हुजूरे आला, आपने तो हीरे खोज लिये हैं—हीरे !"

....महीना भर मुश्किल से बीता होगा कि फिर एक रात को कोठी के ऊपर से "ठाँय-ठाँय" की आवाजें गूँजने लगीं और फिर विनोद उसी तरह भागा जीने पर। शायद जगपाल को पता चल गया।

अभी दस मिनट पहले एक गोली सनसनाती हुई उसकी कनपटी के पास से निकल गयी थी और वह सड़ाक-से नीचे छत पर लेट रहा था और अपनी बन्दूक की नली मुंड़ेरी के नीचे बने परनाले के छेद में लगाकर उसने उसी दिशा में दो फ़ायर किये थे। जिधर से यह गोली आयी थी सनसनाती उसकी जान लेने के लिये। जगपाल को शायद पता चल गया कि सरकार ऊपर आ रहे हैं तो उसने अपनी नज़र जीने की ओर कर ली और वहीं से लेटा-लेटा चिल्लाया—"मत आइये सरकार मत आइये ! उधर ही रहिये। "ओर उसने फिर ठाँय से एक फ़ायर किया और उसी छेद के भीतर से सामने मैदान में दो छायाएं भागती देखीं तो ठहाका मारकर हँस पड़ा। उठकर खड़ा हो गया। कपड़ों की धूल झाड़ी और जीने की ऊपरी सीढ़ी पर स्तब्ध खड़े सरकार के आगे आकर बोला—"मालिक,

आज दो सियार आये थे और भाग गये अभी। मेरी खोपड़ी उड़ाने आये थे साले। जगपाल की ज़िन्दगी इतनी सस्ती नहीं है। अभी तो बहुत सालों तक सरकार की खिदमत करनी है उसे।"

विनोद ने आगे बढ़कर उसकी पीठ पर हाथ रख दिया। स्नेह से कहा—"बड़े शूरमा हो तुम! शाबाश!" उस समय जगपाल ने नीचे झुककर सरकार के चरण छू लिये थे। फिर कोई घटना न घटी और सर्दी-गर्मी-बरसात की परिक्रमा पूरी हो गयी। दूसरा साल भी बीत गया और फिर तीसरे साल के चरण दीखने लगे सामने।....

....उस रात को ठकुरानी चम्पा ने अपनी सेज से उतार दिया था पति विनोद को कि वह भूखी रह लेगी—किसी डोम-चमार की जूठन न खायेगी हरगिज़। जब उसने यह बात कही थी, वास्तव में कहीं भी जूठन न थी उसके लिए। विनोद ने अपने पर पूरा नियन्त्रण रखा था। रूपकला के साथ उसके सम्बन्ध बहुत ही शुभ्र-धवल जैसे थे। लेकिन जब सचमुच ही चम्पा के लिये जूठन बन गयी कहीं, तो वह अकुला उठी एक दिन। महीने पर महीने बीतते चले गये उसे हर रात को अकेले सोते, तो उस शीतल सेज पर तपती युवती ठकुरानी का संयम डोल गया एक दिन।

अकुलाती विवश नारी ने अपनी हम-उम्र नौकरानी रमदिया से एकान्त में पूछा—"तूने देखा है कभी उस हरामज़ादी को?"

"देखा तो नहीं है मालकिन, लेकिन सुनते हैं गाती बहुत अच्छी है। सरकार उसके गले पर रीझ गये हैं।"

"मेरा गला खराब है, रमदिया?"

"कौन नासपीटा कहता है? मालकिन, तुमने तो कभी इस ओर ध्यान ही न दिया। सरकार को गाने-बजाने का बचपन से ही शौक रहा है। बुरा मत मानना मालकिन, मर्द को अपने वश में रखना चाहे तो सबसे पहले औरत अपने मर्द की आदतें अपनी बना ले। मेरा आदमी कुसंग में पड़कर भँगेड़ी हो गया, तो मैंने चटपट खुद ही भाँग घोंटना शुरू कर दिया। इत्ता खुश हुआ कि तुमसे क्या कहूँ!"

"मैं गाना सीखूंगी।"—ठकुरानी ने अनायास ही कहा।

"ज़रुर सीख लो मालकिन, गाना तो तुम्हें यों आयेगा!" रमदिया ने चुटकी बजाकर कहा—"और फिर देखना, सरकार तुम्हारे क़दमों पर न लोट जायें तो कहना।"....

....हवेली के पिछवाड़े ही तिलक वाले पंडित वासुदेव का घर था। वे दूर-दूर तक राधेश्यामी रामायण वाँचने जाते थे। हारमोनियम अच्छा बजा लेते थे और ठेका लगाना भी जानते थे। पर इधर बाजार कुछ मन्दा चल रहा था। लोगों की धर्म पर आस्था कम होती जा रही थी। फलतः पंडितजी ने अपनी छोटी-सी कोठरी में चूरन-चटनी रख ली थी और वैद्य बन गये थे 'श्री राम औषधालय' के। कोई रामायण बैठाता तो चले जाते, वरना औषधालय चलाते। हवेली में उनका पर्दा न था।....

ठकुरानी ने एक दिन वासुदेव पंडित को बुला भेजा। वे बड़े प्रसन्न हुये ऐसी महान् शिष्या को पाकर। खँखारकर बोले—"तुम्हारे पूरे खानदान को जानता हूँ। तुम्हारे बाबा-परबाबा सभी संगीत-प्रेमी ज़मींदार थे। वह संस्कार तुममे भी ज़रुर होना चाहिये। नारियों के पास यह कला जन्मजात होती है। तुम तो बड़ी सरलता से सीख जाओगी संगीत।"

परन्तु दो सप्ताह तक मगज़ मारकर जब पंडितजी चम्पा को एक भी सरगम न सिखा पाये तो उन्होंने जान लिया कि—ये वे तिल नहीं है, जिनसे तेल निकलता है। अब कैसे क्या करें? कैसे पिण्ड छुड़ा पायें? पंडितजी ने सोच-साच कर हारमोनियम के पर्दों पर नम्बर डाल दिये और वही अपनी राधेश्यामी तर्ज निकालना सिखा दिया और कह दिया जाते-जाते—"इसी का अभ्यास करो कुछ दिन।"

दिन-रात अपने कमरे में हारमोनियम की धौकनी ज़ोर-ज़ोर से खींचती चम्पा राधेश्यामी तर्ज निकालती रही, नम्बर देख-देखकर और अन्त में अभ्यास हो ही गया।....

विनोद तो बहुत ही शान्त-सौम्य प्रकृति का युवक था, जैसे कलाकार होते हैं। उसने वाह्य-रस से कभी पत्नी से मन-मुटाव प्रकट न होने दिया। उसी तरह बोलता-चालता रहा, खाता-पीता रहा, हँसता-मुस्कराता रहा।

फिर जब एक दिन सरे-शाम ही मेंह बरसने लगा और विवश-सा विनोद आराम कुर्सी पर बैठा बादलों की ओर देख रहा था, बिलकुल अप्रत्याशित रूप से पत्नी चम्पा ने सामने आकर पूछा—"गाना सुनोगे ?"

चौंककर, अचरज दबाकर बोला—"क्यों नहीं सुनूंगा ? सुनाओ कुछ।"

उत्साह से भरी चम्पा हारमोनियम की पेटी उठा लायी और अपनी अभ्यस्त लय दो बार बजाकर पूछने लगी—"गाऊँ ?"

"गाओ।"—विनोद ने शान्त भाव से कह दिया।

चम्पा ने धीरे-धीरे गाया—"भाई, दो लड़के राम-लखन इस दण्डक वन में आये हैं। औ, संग में सीता नारी को सुकुमारी को भी लाये हैं।"

विनोद के होठों पर हँसी आयी, लेकिन ज़प्त कर गया। चम्पा ने आगे गाया—"जब मैंने तेरा नाम लिया, सुनते ही उसने दी गाली। मेरे कान कतर डाले औ, मेरी नाक काट डाली।"

तब विनोद अपने को रोक न सका और खिलखिला कर हँस पड़ा। क्षुब्ध चम्पा ने फुस्स की आवाज़ करके जोर से धौंकनी बन्द कर दी।....

संगीत से पति को वश में करने की आशा छोड़कर चम्पा ने फिर रमदिया की कुमन्त्रणा से दूसरे पथ का अनुसरण किया। दाँत पीसकर बोली,—"पहरेदार रखा गया है। मैं न इस पहरेदार को जिन्दा रहने दूँगी और न उस रंडी को। मैं ठाकुर चरन सिंह की नातिन हूँ, जिन्होंने अपने हाथों दस खून किये थे।"

अपनी इस निकृष्ट योजना में उसने जाने कितना पैसा बहा दिया, पर सफल न हो सकी वह और यों ही दो साल बीत गये और तीसरे साल के चरण दिखने लगे सामने, तो जलती-सुलगती चम्पा ने हार कर अपने मायके खबर भेजी।....

....अब अचानक ही एक दिन सरकार नहीं आये रात को। रमजान थककर उठ गया। रूपकला ने सारी रात छटपटाते आँखों में निकाल दी सरकार की प्रतीक्षा करते, पर सरकार न आये। दूसरी रात भी यही हुआ और तीसरी रात भी।

घबरायी-घबरायी रूपकला ने अन्त में अपनी दासी को हवेली में भेजा कि क्या बात हुई ? सरकार की तबियत नाशाद है क्या ?

दो घण्टे बाद दासी लौट आयी। दासी ने जो कुछ कहा, उसे सुनकर रूपकला के हाथों के तोते उड़ गये।

दासी ने सुनाया रूपकला को—"ठकुरानी के बाप और भैया दोनों आ गये हैं।" आगे जो कुछ कहा उसका सारांश यह था—बूढ़े बाप ने बेटी और दामाद को अकेले में बैठाकर बातें कीं। बेटी की ओर मुख़ातिब होकर बोले, "सारी ख़ता तेरी है चम्पा। तूने बड़ी बेवक़ूफ़ियों के काम किये हैं। तूने लल्लू विनोद को इतने क्लेश दिये। यह तूने बहुत ही बुरा किया। हम कहते हैं—वह लौंडिया अगर सचमुच ख़तावर होती तो हम उसकी खाल खिंचवाकर भुस भरवा देते, सबकी आखों के सामने। लेकिन वह बेचारी तो क़तई निर्दोस है। न इन लल्लू विनोद की ही कोई ख़ता है। बड़े लोगों की औलाद हैं, बड़े ज़मींदारों को जाने कितनी तरह के शौक होते हैं। ख़ानदानी माद्दा है यह तो। मन बहलाव है एक। तुझे तसल्ली रखनी चाहिये थी। तबीयत भर जाती तो ये आप ही छोड़ देते उस लौंडिया को। तेरे काम ग़लत हुये सब! भला उस ग़रीब की जान लेने से क्या फ़ायदा। असली ख़तावर तो तू है। जो हुआ सो हुआ, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है माफ़ी माँग लल्लू विनोद से। पैर पकड़ इनके। क़दमों पर सिर रख कि जो कहोगे वह करूँगी।"

चम्पा ने सजल नयन होकर पिता के सामने ही पति के चरणों पर सिर रख दिया तो विनोद ने द्रवीभूत होकर उसका सिर उठाकर कहा, "मैं तो तुम्हें कष्ट देना पाप मानता रहा हूँ तुम दुखी रहो अगर तो मेरा जीवन ही व्यर्थ है।"

सुनकर बाप भी रोने लगे और चम्पा भी रोने लगी झर-झर। घर का वातावरण करुण हो उठा। अब कुछ कहने को ही न रहा किसी को।....

शाम को सब लोग मन्दिर गये थे भगवान् की आरती देखने। चम्पा रुकी रही वहीं। भीड़ छँट गयी तो उसने इशारा करके पुजारी को भी हटा दिया थोड़ी देर के लिये और तब आरती-दीप से आलोकित भगवान् की पावन प्रतिमा के आगे पति के साथ खड़ी चम्पा ने करुण कण्ठ से कहा—"भगवान् के चरण छूकर सौगन्ध खाओ, रात को हवेली में ही सोया करोगे। उसे अपनी बग़लगीर नहीं बनाओगे, शपथ करो।"

पर कटे पंछी-सा विनोद भगवान् के चरणों में झुक गया। उसने भगवान् के चरण छूकर सौगन्ध खा ली आखिरकार।

इतनी कहानी सुनाकर दासी चुप हो गयी तो थर-थर काँपती रूपकला उसी दासी से पूछने लगी आकुल-व्याकुल होकर—"अब मैं क्या करूँ?"

दासी ने बड़ी शान्ति से कहा—"तुम्हारे लिये ठकुरानी ने संदेशा दिया है—उससे जाकर कह दे या तो वह चुपचाप चली जाय यहाँ से या फिर खुद आकर जूते मारकर निकाल दूँगी कोठी से।"

दासी चली गयी। रूपकला पाषाण-प्रतिमा होकर जहाँ की तहाँ बैठी रही, फिर वहीं लुढ़क गयी वह। भोर की वेला, कोठी में हलका-हलका शोरगुल हुआ। रूपकला ने सरकार की दी हुई अँगूठी का हीरा चाट लिया था। एक आदमी विनोद को खबर देने दौड़ा गया। उधर से वह नंगे पैर भागा आया।....

फर्श पर लुढ़की पड़ी रूपकला को खड़ा-खड़ा देखता रहा घड़ी भर, फिर वह आगे बढ़ा और रूपकला की निर्जीव काया को छूने लगा तो सहसा पहरेदार जगपाल ने उसके हाथ पकड़ लिये और आखों में आँखें डालकर करुण विनती करके कहने लगा—"अब तुम इसे मत छुओ सरकार! अब यह गा नहीं सकेगी। तुम्हारे किस काम की रही यह? अब यह मिट्टी है। यह मिट्टी मुझे दे दो मालिक मुझे छूने दो यह मिट्टी!"

"तुम?"—दुख में डूबा विनोद सिर्फ़ इतना ही कह पाया।

जगपाल ने दीनताभरे स्वर में कहा—"यह मेरी बीबी है सरकार। ब्याह हो गया था हमारा। और मैं फ़ौज में नौकरी करने चला गया था! कई साल बाद लौटा तो पता चला मुझे। गौना होने से पहले ही तुम इसे अपने कर्ज़े में वसूलकर लाये और जीते जी तुमने इसे छूने न दिया मुझे। पर अब यह मिट्टी तो मुझसे मत छीनो!—मेरी औरत की मिट्टी है यह। तुम्हारा बाक़ी कर्ज़ा अब यह नहीं चुका पायेगी। अब इस मिट्टी पर रहम करो सरकार!"

विनोद की ज़ुबान न खुली। और फिर जगपाल ने नीचे झुककर रूपकला की लाश को बाँहों में उठा लिया और उस निर्जीव देह को कलेजे से लगाकर चूम लिया सबके सामने ही।

लाश को बड़ी हिफ़ाजत से पलंग पर लिटाया उसने। फिर वहीं लाश के पास खड़ा होकर लाश से कहने लगा भरे गले से—क्यों रूठ गयी तू ? मुझे देख, मैं तो तुझसे रूठा ही नहीं। दो साल यों ही गुज़ार दिये, दो सौ साल भी यों ही गुज़ार देता मैं कि सरकार का कर्ज़ पूरा हो जायेगा सरकार का जी भर जायेगा तुझसे, तो मैं तुझे अपनी कुटिया में ले जाऊँगा। घर बसाऊँगा अपना। पर तुझसे ज़रा भी इन्तज़ार न हुआ सरकार का। क्यों नहीं सह पायी यह ज़रा-सी चोट ? मुझे देख कित्ता भारी पत्थर अपनी छाती पर रखे जिन्दा रहा हूँ मैं। आदमी जिसे सचमुच प्यार करता है, उसकी खुशी के लिये सारा दुख-दर्द हँसते-हँसते झेलता है। तुझे मालूम है, मैं इस ठाकुर को जान से मार डालने की नियत से यहाँ आया था। इसीलिये यह नौकरी की थी कि मौक़ा पाते ही इसके सीने में बन्दूक की गोली उतार दूँगा—बदला लूँगा इससे। लेकिन जब मुझे पता चला कि तू सरकार को सचमुच प्यार करने लगी है, वह इरादा मैंने यों ही तज दिया। तेरी सौगन्ध रूपा, सिर्फ़ तेरी वजह से नहीं मार सका इस ठाकुर को और अपनी जान हथेली पर लिये खड़ा रहा सारी-सारी रातों कि इस ठाकुर का बाल न बाँका हो, कि इस अभागे को मेरी रूपा प्यार करती है।

"तू जानती है ? आदमी किसी को प्यार करने लगता है तो कर्ज़दार हो जाता है उसका। और फिर सूद-दर-सूद उसी कर्ज़े को भरते आदमी की पूरी जिन्दगी गुज़र जाती है।

"मैं तेरा तो कर्ज़दार था रूपा और तू सरकार की कर्ज़दार थी। तू बीच में ही चली गयी। अब ये कर्ज़े कैसे पूरे होंगे रूपा ? बोल रूपा ये कर्ज़े अब कैसे उतरेंगे ? जवाब दे रूपा, मेरी बात का जवाब दिये जा !"

विनोद के पैर काँपने लगे। वह सिर पकड़कर वहीं जमीन पर बैठ गया।

★

केला के तीन पेड़

जयदेव सुनार के कोई न था। कब से वह, माया-ममता-ही साधू-सन्यासी की तरह, इस गाँव में आ कर रहने लगा था—इस का इतिहास कोई नहीं जानता। न कोई उस की उम्र का हीं अन्दाज लगा सकता था। अधबूढ़े-अधबूढ़े लोग कहते कि उन्होंने अपनी जवानी में जयदेव को इसी तरह का देखा था। गाँव का नन्हें जर्राह स्वाँग में विदूषक का काम करता था। वह कहता था कि इस जयदेव की उमर दो सौ साल की है; ग़दर में यह अस्सी को पार कर चुका था और राजा भोज को इसने अपने बचपन में देखा था।

जयदेव को कभी किसी ने बीमार न देखा; न कही वह कभी अपने भाग्य पर रोया-धोया। वह बहुत ही कम बोलता था। हँसी-मजाक पसन्द न करता था और बच्चों से उसे चिढ़ थी। सुबह से लेकर शाम तक अपनी मिट्टी की भट्टी के आगे बैठा खट्-खट् करके छोटी-सी हथौड़ी चलाता रहता। आँखों पर टेढ़ी कमानी का चश्मा चढ़ाये वह अपने काम में डूबा रहता और दिन-रातें उस के आगे से सरपट भागती चली जातीं।

घर पिछवाड़े से टूटा था। जयदेव ने उल्टी-सीधी ईंट लगा कर आड़ कर की थी वहाँ पर। उन्हीं ईंटों के किनारे से एक दिन कुछ अंकुर निकले और फिर जयदेव के देखते-देखते हाथ भर ऊँचे तीन पौधे हो गये।

तब से जयदेव की दिनचर्य्या में थोड़ा परिवर्तन हो गया। अब सुबह उठ कर वह सबसे पहिले उन पौधों की खोज खबर लेता और रोज ही जब-तब काम छोड़ कर उन के पास जा बैठता। नीचे की मिट्टी ठीक करता रहता, उन के चारों ओर दूर तक ईंटें लगाता, उन के पत्ते छूकर देखता।

पौधे परिचर्य्या पाकर जल्दी-जल्दी बड़े होने लगे। फिर एक दिन उनकी चोटी छप्पर से जा लगी। अब आगे और जगह न थी।

जयदेव कई रोज तक रात को लेटा-लेटा सोचता रहा। बड़ी भारी चिन्ता का विषय हो गया उस के लिये।

इस छप्पर को हटा दे ? तो फिर रोटी कहाँ बनायेगा ? लेकिन छप्पर बिना हटाये तो किसी तरह पेड़ों की बढ़वार हो ही नहीं सकेगी, यों ही रह जायेंगे।

एक रात को फिर यह सपना देखा—वे तीनों पेड़ अपनी जगह से सरक कर उसकी खाट के पास आ खड़े हुये; फिर धीरे-धीरे उनके हाथ-पैर और मुख हो गये; जटाये हो गई और गेरुआ वस्त्र हो गये; गले में रुद्राक्ष। सन्तों की वाणी में वे तीनों पेड़-साधू एक साथ हाथ उठाकर बोले—'हमें बन्धन मुक्त कर दे; स्वार्थी न वन—'

तब भोर की आरती के समय, कुंए के नीचे खुरपी से जमीन खोद कर बुड्ढे जयदेव सुनार ने केला के तीनों छोटे-छोटे पेड़ लगा दिये। फिर उन का घेरा बना कर चार डोल पानी दिया और नहा-धो कर भगवान् पर जल चढ़ा कर चला गया।....

उस दिन फिर जो कोई कुंये पर नहाने आया, जो कोई उधर से निकला, उसी ने अचरज से केला के वे तीन पेड़ देखे और खुश हुआ और बुड्ढे जयदेव सुनार की तारीफ़ की। तीनों छोटे-छोटे पेड़ कुंये के नीचे लहलहाते खड़े थे और देखने वालों का मन मोहते थे, मानो उस गाँव के अभ्यागत हों। सारे दिन वहाँ पर उनकी चर्चा रही और सारे दिन वे लहलहाते रहे।....

दिन डूबा, साँझ बीती और रात पड़ गई तो गाँव पर चारों ओर से सन्नाटा घिर-घिर कर आने लगा। बुड्ढा जयदेव भगवान् की आरती लेकर मन्दिर से लौट रहा था। बाहर गाँव के दड़े में आसमान से चाँदी का रंग गिर रहा था और मन्दिर की उँची चोटी उसमें ऐसी चमक रही थी मानो कोई नीचे को उतर आया हो। कुंआ खाली पड़ा था और नीचे केला के वे तीनों छोटे-छोटे पेड़ खड़े थे चुप-चुप, सफ़ेद-दूधिया चाँदती में नहाये।

सुनसान राह में, धीरे-धीरे पाँव धरता बुड्ढा सुनार उधर आँखें किये-किये आगे बढ़ने लगा। दो-चार क़दम ही गया होगा कि दिल न माना और लौट आया और पास आकर आँखें भर कर उन्हें निहारा, मानो तीन छोटे-छोटे बच्चे यों बेखबर होकर सो गये हों—एक दूसरे के ऊपर झुककर।

जयदेव ने धीरे से उन्हें छुआ। कैसा शीतल स्पर्श है! कलेजे तक छू रहा है।

अचानक फिर जो नज़र उठी तो देखा—गाँव का साँड़ झूमता चला आ रहा है सामने से।

बुड्ढे ने अपनी घिसी लाठी सम्हाली और ऊपर को हाथ उठा कर खड़ा हो गया। साँड़ चला ही आ रहा था। उसने बुड्ढे जयदेव की परवाह न की न उस घिसी लाठी की। वह उन सोये बच्चों के पास जा रहा था, दैत्य का वेष धरे।

जयदेव से सहा न गया। वह लाठी उठाये केलों के आगे बढ़ आया और 'धुत्-धुत्' करने लगा। पर साँड़ न माना, आगे को आया और नीचे को फैले पत्तों की किनारी सूंघने लगा।

तो बुड्ढे सुनार ने ताक़त लगा कर उसकी पीठ पर लाठी मारी। साँड़ ने एक बार अपनी मोटी गरदन घुमा कर, सींग हिला कर सूं:-सूं:' की और फिर पेड़ों के घेरे में अपना सिर घुसेड़ने लगा।

जयदेव ने फिर लाठी उठाई और 'फट्-फट्' करके उसके सिर पर ज़ोर-ज़ोर मारना शुरू किया।

थोड़ी देर तक साँड़ ने ध्यान न दिया और सिर से उस मिट्टी के घेरे को तोड़ता रहा और जयदेव की लाठी खाता रहा। फिर अचानक उसने सिर उठाया ऊपर को। तो क्रोध में भरे बुड्ढे ने ताककर उसके नथने पर एक चोट मारी खेंच कर।

तब एक क्षण के लिये, चाँदनी में जयदेव ने उस दैत्याकार साँड़ की वे चमकती आँखें देखीं जो गुस्से से जल उठी थी। फिर पलक मारते उसे नीचे को सिर करते देखा, उसके दोनों भयानक सींगों को आगे आते देखा; आँखों के आगे, बिलकुल अपने ऊपर और उसके सींग जयदेव के कुरते से छुये; जयदेव पीछे को हटा; भय के मारे उसकी आँखें मूंद गईं।

फिर आगे का दृश्य उन आखों से न देखा।

निराधार में विचरने वाले चन्द्रमा और नक्षत्रों ने देखा—

कुंये से तनिक हटकर, धूल में संज्ञा-शून्य बुड्ढे जयदेव सुनार की देह लोट रही है और साँड़ अपने सींगों में उस की आँतें पहिने 'सूं:-सूं:' करता चला जा

रहा है।—देख कर चन्द्रमा और नक्षत्रों ने मुंह फेर लिया। फिर वे आगे बढ़ने लगे।

सारे गाँव पर सन्नाटा घिर आया था। कुँआ खाली पड़ा था और केला के वे तीनों छोटे-छोटे पेड़ खड़े थे चुप-चुप, सफ़ेद दूधिया चाँदनी में नहाये।

× × ×

इस तरह उनकी बन्धन-मुक्ति के साथ जयदेव की जीवन-मुक्ति हो गई।

और तो कोई न था। गाँववालों ने ही मिल कर सब क्रिया-कर्म कर दिया। दूकान में जो कुछ निकला उसे श्राद्ध में लगा दिया।

जयदेव का अस्तित्व मिट गया और केला के वे तीनों पेड़ लावारिस हो गये।

अनाथों की तरह, कुँये के नीचे पास-पास, एक दूसरे पर हाथ रक्खे खड़े रहते सारे दिन भूखे-प्यासे। कभी किसी को ध्यान आ जाता तो एक घड़ा-आध घड़ा पानी उन में डाल देता; कभी किसी को दया आ जाती तो नीचे की मिट्टी ठीक कर देता।

कभी कोई दुष्ट बालक आ कर जड़ों में काँटा चुभो देता; कभी कोई पशु आ कर झटका दे कर पत्ते तोड़ कर चबा जाता और फिर हड्डियों की तरह बीच का हिस्सा लटकता रहता महीनों।

कोई देखनेवाला न था। अनाथों की तरह पास-पास खड़े रहते, सारे दिन भूखे-प्यासे और सई-साँझ से ठिठुर कर सो जाते यों ही।

जयदेव का अस्तित्व मिट गया और केला के वे तीनों पेड़ लावारिस हो गये।

× × ×

पहिले यह समूचा गाँव चौहान ठाकुरों का था। पीछे कर्ज़ में पौन गाँव की ज़मींदारी उनसे निकल गई; सिर्फ़ पछाहीं पट्टी का कुछ हिस्सा बच रहा।

कर्ज़ा दिया था साहूकार पूरनमल ने। सो उसके बेटे हरेकृष्ण पर गाँव की जमींदारी गई। हरेकृष्ण ही अब गाँव में सबसे बढ़ती पर था; उसके घर लक्ष्मी बैठ गई थीं। चौहान ठाकुरों का उससे जलना लाज़िमी था और उसका सिर उठाना भी सहज बात थी। फलतः गाँव में भी दो पक्ष हो गये थे।

ठाकुरों का हाल अच्छा न था। पर तो भी उनका दबदबा तो था ही, हाथी

लेटा भी तो भैंसे के बराबर, लोग सामने तो अदब करते ही थे। नाई, धोबी 'राजा साहब' कह कर पुकारते।

पर घरों में भूनी भाँग न थी। बड़ी-बड़ी हवेलियाँ और रथखाने यों ही खड़े थे।

हवेलियों की दीवारों से पुराना ईंट-चूना गिरने लगा था, छज्जे टूटने लगे थे और रथखानों में भुस भरा रहता, अघियाने सुलगते रहते और जली हुई चिलमों की राख जहाँ-तहाँ पड़ी रहती। शाम को कभी पुराने ज़माने की कोई लालटेन लटक जातीं तो लटक जाती, नहीं तो अँधेरे में चिमगादड़ इधर से उधर उड़ते-फिरते!

खेत रह गये थे और वह एक तिहाई ज़मींदारी। इतने ही पर गुजर-बसर करके दिन काट रहे थे और अपने बुजुर्गों को कोसते थे कि—चार दिन की अय्याशी करके हमें मटिया-मेंट कर गये नालायक।

पर ज़ोरावर सिंह में यह बात न थी। वह न पूर्वजों का रोना रोता था, न अपनी शान-शौकत हेठी होने देता था। वह हरेकृष्ण को 'वनिया-वक्काल' कहकर विभूषित करता था और गाँव में अपना 'साम्राज्य' मानता था। चाहे किसी की सवारी अपने काम के लिये मँगवा लेता और चाहे जिस दूकान से कोई चीज़ उठा लेता। गाँव बाजार में वह शाक-तरकारी खरीदता न था। नौकर पीछे चलता और किसी भी डलिया के आगे खड़ा होता और नौकर से कह देता—'यह उठा लो।' बेचारे दीन-दुर्बल, मुराव-काछी खुद ही वह चीज़ उठा कर दे देता और गाँव के 'राजा साहब' को हाथ जोड़ कर 'सलाम' कर लेता।

रामलीला होती तो ज़ोरावरसिंह ही श्रीरामचन्द्रजी का तिलक करता। होली आती तो ज़ोरावरसिंह ही पहिली पूजा करता। वह अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा रोके था। परन्तु दरिद्रता उसे भी लपेटे थी। घी-दूध के दर्शन न होते थे और एक साल के कपड़े तीन-तीन साल तक घिसते थे, यहाँ तक कि उन में से कुहनियाँ और कन्धे दीखने लगते थे।

उधर हरेकृष्ण का ठाठ जम रहा था। गाँव के बीच दड़े में उसकी पक्की कोठी बनी; कोठी में मेज-कुरसियाँ लगीं और बड़ी-बड़ी तसवीरें और झाड़-फ़ानूस

टाँगे गये। सामने एक शीशा लगा; शीशे पर फूलों के बीच—'साहू हरेकृष्ण अग्रवाल, रईस व ज़मीर' लिखा था।

कोठी के चारो ओर पक्की चहारदीवारी लगी थी। उस पर किनारी-किनारी गमले सजे रहते, गमलों में फूल खिले रहते। रात को दो पहरेदार पहरा देते, भाला हाथ में लेकर।

साल में दो बार गाँव भर की दावत होती, दस बार ब्रह्म-भोज होता। राम-लीला में मिठाई बँटती और मुहर्रमों में मुसलमानों को केवड़ा-जल पड़ा शरबत पिलाया जाता। मन्दिर को एक सीधा रोज़ जाता और पाठशाला के गुरुजी उसी के घर भोजन करते। वह हाट-बाज़ार निकलता न था। अपनी कोठी में बैठा मित्रों के साथ शतरंज खेलता रहता या लेटा लेटा कोई तिलस्मी उपन्यास पढ़ता रहता। शाम को कभी घूमने निकलता या कहीं मेले-तमाशे में जाता तो पाँच जवान पीछे लाठी ले कर चलते। कुछ लोग उससे खुश थे। कुछ चिढ़ते थे; कहते थे—'इसका बाप सड़क पर चना और गुड़ बेंचा करता था; टट्टू लादता था बाज़ारों में।'

इस तरह सुख-दुख के बीच दिन बीत रहे थे सबके कि एक दिन अचानक ज़ोरावरसिंह के बूढ़े बाप मर गये। बड़ी परेशानी हुई। हाथ खाली और तेरहवीं सिर पर। मरे हुए बाप का अगर श्राद्ध न हो सका तो दुनिया क्या कहेगी? पर कहाँ से करे? औरत पर केवल एक जोड़ी चाँदी के कड़े रह गये हैं और घर में पीतल के दस-पाँच बरतन। खेत गिरवी रख दें, तो फिर खायेंगे क्या? ज़मीं-दारी सब के साझे की है, उस पर अधिकार नहीं है। अब कौन राह निकले? भगवान् ही कोई जतन करेंगे, नहीं तो कहीं मुँह दिखाने के क़ाबिल न रह जायगा। मरे बाप की तेरहवीं भी न कर सकेगा!

खाट पर करवट बदल रहा था और चिन्ता के मारे नींद न आती थी। घर वाली जग गई, बच्चे ने मूत दिया था। इन का यह छटपटाना देखा तो दुख लगा। धीरे से बोली—"सोये नहीं क्या?"

ज़ोरावर ने चट इधर को मुँह कर लिया और बोला—"सोयें क्या, सोच लग रहा है, कैसे क्या होगा; तीन दिन रह गये हैं—"

रुक कर वोली—"ईश्वर चाहेंगे तो सब हो जायगा। ये कड़े बेंच लेना और बाक़ी किसी से उधार ले लो; अगली फ़सल में दे देना। ईख खड़ी है; पचास-साठ में तो बिक ही जायगी।"

"उधार कौन देगा?"

धीरे से कहा—"हरेकृष्ण से नहीं मिल जायगा?"

"उससे माँगने न जाऊँगा।"

"क्यों? क्या भीख माँग रहे हो? यह तो लेन-देन है, उन पर रुपया है तो आज ऊधार दे रहें हैं, सूद न लेंगे क्या? एहसान काहे का?"

ज़ोरावर ने दबी ज़ुबान से कहा—"और जो उसने मना कर दिया?"

पत्नी सुन कर चुप रही। हाँ, अगर मना कर दिया तो क्या जब्ररदस्ती ले लेंगे? पर तो भी धीरे से कहा—"मना काहे कर देंगे—"

× × ×

ज़ोरावर सिंह बाप की तेरहवीं के लिये ऋण लेने चला तो उसके पैर बोझिल हो गये। एक क़दम चलता था और रुक जाता था। पर विवशता आदमी से सब कुछ करा लेती है।

जिसे हमेशा गाली देता रहा, बनिया-बक्काल कहता रहा, उसी के द्वार पर वह ऋण की भिक्षा लेने जा पहुँचा। जब वह हरेकृष्ण की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा तो भीतर आत्मा ने अपनी छाती में घूसा मार लिया और बाहर मुँह पर स्याही मिली ज़र्दई छा गई। गले में थूक सूखने लगा।

हरेकृष्ण उस समय घर पर न था। कोठी के भीतर एक किनारे से बूढ़ा नौकर आँखें मूँदें बैठा अपनी छोटी-सी हुक्किया गुड़गुड़ा रहा था।

आहट पाई तो चौंक कर खड़ा हो गया। सिर झुका कर सलाम की और मूढ़ा खींच कर आगे कर दिया और 'हुकुम' पूछा।

ज़ोरावर सिंह के दिल में द्वन्द्व-सा मचा था; कहें या न कहें?

यह भूरा नाम का नौकर था। असल में, घर का मैनेजर यही था। हरेकृष्ण को इधर दिलचस्पी न थी और भूरा बहुत अरसे से, बाप के ज़माने से, सब काम

करता आ रहा था, उससे कुछ भी छिपा न था। न हरेकृष्ण न उसकी माँ, भूरे की बात कोई टालता न था। बुजुर्ग की तरह रहता था उस घर में।

जोरावरसिंह का मुँह न खुला। नौकर के आगे 'याचना' न हो सकी। पर नौकर समझ गया। उसने दुनिया देखी थी, अनुभव में उस के बाल सफेद हुये थे। बोला—"सरकार, मेरे करने काम हो तो कहो, शरम काहे को; मैंने तो तुम्हें गोदी में खिलाया है। बेटा, आपद-विपद में मुझसे खिदमत न लोगे तो और कब काम आऊँगा ?"

ज़ोरावर की हिम्मत बँधी, खाँस-खँकार कर बोले—"दाऊ, तुम तो जानते हो, हाथ हमारा आजकल तंग है और बप्पा का पीछा है—"

भूरे ने फिर हाथ जोड़े और ठाकुर के आगे आकर बोला—"राजा, तुम हुकुम करो। भगवान् सब पूरा करेंगे। कितने से काम चल जायगा ?"

ज़ोरावर ने सिर नीचा कर के कहा—"दो सौ।"

····इन चाँदी के टुकड़े में जाने कैसी शक्ति है! लेकर चले तो उछाह से दिल भरा था। मन में न ग्लानि रही न चेहरे पर स्याही। सोचने लगे—लड्डू बनवा लें मालपुओं से ज़्यादा नाम न होगा। हरेकृष्ण के उस बूढ़े नौकर पर जाने कितनी श्रद्धा उमड़ रही थी।

दो सौ रुपये यों ही हथ उधारे दे देना कोई साधारण बात न थी। यह एक रहस्य था; पर कोई साज़िश न थी और रहस्य सिर्फ़ यही था कि वह बूढ़ा नौकर हरेकृष्ण के सब से प्रबल शत्रु को इस मीठी मार से मारना चाहता था।

और उसकी यह चाल सचमुच काम कर गई। तेरहवीं के रोज 'न्योता' आया तो हरेकृष्ण का वहाँ जाना लाजिमी हो गया। ग़मीं का मामला था और जोरावर खुद कहने आया था। हरेकृष्ण ने ठाकुरों की चौपाल पर बैठ कर दो पूड़ियाँ और आधा लड्डू खाया। सब बहुत खुश हुये। बड़े-बूढ़े बोले—चलो मेल-जोल हो गया, दिल साफ़ हो गये दोनों के।"

× × ×

एक छमाही बीत गई। वसन्त ऋतु आ गई थी। पेड़ों पर पत्ते पीले होकर झर रहे थे। सारे दिन हवा के साथ जमीन पर चारो ओर वे पीले पत्ते उड़ते

फिरते। जाड़ा गुलावी हो गया था और लोग लिहाफ़ छोड़कर रात को कम्बल ओढ़ने लगे थे। खेतो में सरसों पकी खड़ी थी और आमों पर कहीं-कहीं बौर आने लगा था।

बूढ़ा नौकर भूरा कोठी के आगे, कुँयें की किनारी पर खड़ा-खड़ा हाथ के चाकू से केला के पीले, सड़े-गले पत्ते काट रहा था। वे पत्ते सर्दी और बरफ से झुलस गये थे। अव और नई कोंपलें निकल रही थीं।

आखिर वह बूढ़ा नौकर इन की खबर लेनेवाला हो गया था। वह दिन में एक वार उन में नियम से पानी डाल देता था और फिर कोठी के आगे बैठा, अपनी छोटी-सी हुक्किया गुड़गुड़ाता इनकी ओर देखता रहता था।

केला अव बाँस-बाँस भर उँचे हो गये थे और उन की जड़ें खम्भों-सी मोटी मजवूत दीखती थीं। आसमान में मस्तक उठाये वे तीनों पेड़ इस तरह सारे दिन झूमते थे मानों कसरती जवान हों कोई, पछाँह के ऊँचे क़द के और बहुत लम्बे-चौड़े

दो पर फूल आया था और एक पर चरका लटक रहा था, असंख्य फलियो का। इस तरह सजे खड़े थे जैसे हार पहिने हों।····

चाक़ू से पीला पत्ता काटते-काटते भूरा ने देखा—सामने से जोरावर चला जा रहा है तेज क़दमों से। तो आवाज देकर बुलाया। मनुष्य अपनी कमजोरी पकड़ी जाने पर अति दुर्वल और दीन हो जाता है। छः महीने हो गये। उसने एक बार भूरे-से वात तक न की थी। डरता-सा था और डर कर उसकी आँख वचा कर निकल जाता था। आज जव उसने आवाज देकर बुलाया तो चेहरा उतर गया। अव आज यह जरूर तक़ाजा करेगा!

पर भाग अच्छे थे। भूरा ने रुपयों की चर्चा तक न की। बोला—"बेटा बहुत दिनों से तुम्हें नहीं देखा था; है तो सव सैरसल्ला? कोई तकलीफ़ हो तो बेखटके कहना आधी रात हाजिर मिलूंगा सेवा को। मेरे जिन्दा रहते तुम्हें दुख न हो। मर जाऊँ तो फिर दूसरी बात है।"

जोरावर पर घड़ों पानी पड़ गया। वात बनाने को वोला—"दुख-दर्द पड़ेगा तो तुमसे न कहूँगा तो किस से कहूँगा।"

भूरा बोला—"अरे बेटा, तुम तो राजा लोग हो, तुम्हें यह शोभा न देगा। हम तुम्हारी जूतियों के गुलाम मजूर लोग हैं; हम खड़े रहें और तुम से काम करवायें राम-राम !"

पर जोरावर ने आगे बढ़कर चाकू ले लिया और बोला—"दाऊ की बातें ! यह एक पत्ता काट देने इज़्ज़त चली जायेगी हमारी !"

और एड़ियों के बल उचक कर चट करके वह पत्ता काट डाला।

÷ ÷ ÷

यह भी कोई घटना थी ! पर अतिशयोक्ति करके जैसे कवि लोग कविता बनाते हैं, उसी तरह नमक-मिर्च लगा कर, बढ़ा-चढ़ा कर कहने से बात का बतङ्गड़ बन जाता है।

पहरेदार कुन्दना सुन रहा था। उस ने जोरावर को पत्ता काटते देखा था। नीच जात और ओछा दिल। वह कभी जोरावर के बलिष्ठ हाथों से पिट चुका था। आज उसे मौक़ा मिल गया। रात को अपने साथी से कहा और दिन निकला तो बनिये की दुकान पर कह आया, दस आदमियों के बीच।....

ज़ोरावर थका-माँदा खेत से लौट रहा था। राह में एक मेली की चौपाल पड़ती थी। उसने रोक लिया। हुक्का भर कर पिलाया और सरक कर पास आ बैठा; बोला—"बड़ी बुरी बात सुनी है।"

ज़ोरावर ने हुक्का मुँह से हटा कर पूछा—"क्या ?"

बोला—"सुनते हैं, भूरा ने तुम से केला के पत्ते कटवाये, खड़े होकर !"

"कौन कहता था ?"

उस ने नाम न लिया; बोला—"सुना है ऐसे ही।"

केला का पत्ता तो उस ने काटा ही था' इस में क्या झूठ है। पूछा—"क्या भूरा ने किसी से कहा है ?"

"ना धनवन्ता कह रहा था।"

ज़ोरावर ने कहा—"धनवन्ता की ऐसी-तैसी; साला मेरे मुँह पर तो कहे; जूता दूँ खेंच के, बत्तीसी निकल पड़े !"

मेली ने कहा—"तो झूठ है; वह हँसी में कह रहा होगा। यही तो मैंने कहा

कि—भला उस ससुरे घीमर की यह हिम्मत कि तुम से केला के पत्ते कटवाये! जिस दिन वह घड़ी आ जायगी उस दिन हरेकृष्ण की की कोठी का खरंजा हो जायगा, गाँव में भूत लोटेंगे!"

जोरावर ने कुछ न कहा। चुपचाप उठ कर चला आया। चलते-चलते दहे पर आया तो यकायक उसकी दृष्टि उठ गई केलों की ओर। जहाँ से उसने कल पत्ता काटा था, वह जगह दीख रही थी और तीनों गगन-चुम्बी केला के पेड़ सिर उठाये खड़े थे।

÷ ÷ ÷

जाने कहाँ से भूले-भटके एक महात्मा आ पहुँचे उस गाँव में। मढ़ी पर उन का 'यज्ञ' हो रहा था और रात को कथा। आज कथा की समाप्ति थी। गाँव में डुगडुगी पिटी थी और सब को न्योता था, भगवान् के नाम पर। मढ़ी गाँव पार थी; औरतें तो न जा सकीं; आदमी सब गये। महात्मा बड़े सरल थे और लोक-हित के लिये ही सब करते-फिरते थे। कथा रामायण की थी। पर वे उसके बहाने से उपदेश देते थे। वही 'उपदेश हुआ कि—भाई, मिथ्या दम्भ छोड़ो, मेल-मिलाप से रहो,—राम और भरत की तरह रहो; एक-दूसरे की सहायता करो और आपस का राग द्वेष छोड़ो। सब बराबर हैं; कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं है। कथा की समाप्ति पर आरती हुई। आरती में जो कुछ चढ़ेगा, उस से कल दरिद्रों को भोजन कराया जायेगा।

नाई थाली लेकर उठा तो सामने हरेकृष्ण और उस के पिछे भूरा बैठा था। नाई हरेकृष्ण के आगे झुकने लगा कि भूरा ने पीछे से चौंक कर कहा—'उधर से—"

बायें हाथ पर जोरावरसिंह बैठा था साफ़ा बाँधे। नाई देख न सका। आरती की रोशनी उस की आँखों पर पड़ रही थी। खड़ा रहा अचकचा कर तो हरेकृष्ण ने हाथ उठा कर जोरावरसिंह की ओर इशारा किया और तब आरती की थाली में एक रुपया डाल कर सब से पहिले जोरावरसिंह ने आरती ली।....

वह शंका जो दिन भर मन में घूमती रही थी, निर्मूल हो गई।

मढ़ी से उतरे तो एक पहर रात खिसक गई थी। अँधेरा था और नीचे को उतराई थी। जोरावरसिंह लाठी रोक-रोक कर चलने लगा। सामने भूरा उतर

रहा था। बरावर हुए तो बोला—"बेटा, आओ मेरे कन्धों पर बैठ लो, तुम्हारे पैर फिसल रहे हैं।"

ज़ोरावरसिंह को बड़े जोर से हँसी आ गयी, बोला—"दाऊ, दम तो तुममें है नहीं, कन्धों पर बैठ जाऊँ तो उठा न जायेगा फिर !"

÷ ÷ ÷

पाँड़े की बैठक के आगे से गुज़रे तो 'गौनई' जम रही थी। मुंशीजी इसराज बजा रहे थे और दिलवर काना तबला ठोंक रहा था। जी न माना। घंटा, डेढ़ घंटा वहाँ भी काटा। जब सुलफ़े की चिलम घूमने लगी वहाँ तो उठे।

फिर वही दड़ा आया और वे लोग केला के तीनो पेड़ आये आँखों के सामने कि जो रात में भूत-प्रेतों की तरह धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे आसमान के बीच खड़े।

कोठी से दस हाथ दूर कि कानों में अपना नाम पड़ा। खड़े हो गये मन्दिर की दीवार से लगकर।

ये हरेकृष्ण के दोनों पहरेदार थे, जिनमें से एक उस के हाथों से कभी पिट चुका था। और वही बोल रहा था कि—'इन केलों की फलियों को हाथ लगाने वाला इस गाँव में, चारो जातों के बीच कोई नहीं है। और ज़ोरावर? वे खेत की मूली हैं ! उन के सात पुरखे उतर आयें तो भी एक फली न टूटेगी ! ये केले सेठजी के हैं—'

ज़ोरावर से अब सहन न हुआ। लाठी सम्हाली, आगे बढ़े और कुँये के नीचे आ कर डाँट दी।

"कुन्दना !"

कुन्दना को माटो तो खून नहीं। साँस रुकने लगी। सहम कर खड़ा रहा जहाँ का तहाँ।

ज़ोरावर ने कहा—"अभी तुझे खोद कर गाड़ दूँ; क्या कह रहा था, फिर तो कह एक बार ! साले, कहीं तेरी बोटी तक का पता न लगेगा ! इधर तो आ!

कुन्दना ने आव देखा न ताव, भाग खड़ा हुआ सरपट।

दूसरा पहरेदार स्तब्ध हो कर ज़ोरावर का मुँह ताकता रहा।

फलियों का चरका बहुत ऊँचाई पर था और वहाँ तक हाथ न जाता था। ज़ोरावर तनिक देर उसे देखता रहा। फिर केला पर अपनी लाठी टेक कर गया। कमर में चाकू निकाला और पूरा चरका जड़ से काट कर नीचे गिरा दिया!

फिर उस पहरेदार से कहा—"सुन रे, हरेकृष्ण से कह देना सबरे, लम्बरदार चरका काट ले गये हैं, उन्हें जो करना हो सो करें।"

+ + +

पत्नी ने हाथ में फलियाँ देखीं तो चकित रह गयीं; बोली—"कहाँ मिल गई ये?"

पर ज़ोरावर न बोला। चरका एक कोने में फेंक दिया और साफ़ा उतार कर खाट पर जा बैठा। पत्नी लालटेन हाथ में लिये फलियों को लौट-पौट कर खुश हो रही थी।

ज़ोरावर बोला—"अब देखुंगा, क्या कर लेगा मेरा—"

"कौन?"—पत्नी ने भय से काँप कर कहा—"किसकी बात कह रहे हो?"

ज़ोरावर ने तनिक हँस कर कहा—"यह चरका हरेकृष्ण के केला से काट लाया हूँ' अब देखूं वह मेरा क्या बिगाड़ लेगा!"

पत्नी क्षण भर चुप रही, फिर कहा—"नाहक काट लाये; इन फलियों के बिना क्या मारा जाता था? अब फिर बैर,विरोध बढ़ेगा; और क्या होगा!"

जोरावर ने कहा—"तू नहीं समझ सकती। दुनिया में जीना उसी का है, जिस की बात ऊँची रहे। बैर हो, जान चली जाय, मुझे उस की परवाह नहीं। इज़्जत के आगे जान क्या चीज़ है!"

फिर उस ने सब घटना सुनाई। सुन कर पत्नी चुप रही। पर मन में आशंका खाये जा रही थी कि इस बात का क्या फल होगा।

+ + +

हरेकृष्ण हमेशा सुबह को देर से कर उठता है। भूरा उस दिन कोठी तक न आया। अपने भतीजे के घर गया था। सो पौ फटने से पहले ही वह लाठी

बजाता आ पहुँचा। पहरेदार उदास और चिन्तित हो कर बैठे थे। क्या करें, क्या करें। जोरावर केला काट ले गये और वे कुछ न कर सकें! सेठजी सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?

कि भूरा आ गया। केलों के नीचे हो कर आ रहा था। देखा तो बीच का पेड़ सूना खड़ा है, फलों से रहित, जैसे कोई उसे लूट ले गया हो।

तब पहरेदारों से पूछा कि फलियाँ कहाँ गई इस की।

कुन्दना तो न बोला; दूसरे ने सब कथा सुनाई।

भूरा सन्न रह गया। उन से कुछ न कहा। सीढ़ियों से नीचे उतरा और जोरावर के घर की राह ली।

जोरावर तब तक सो कर न उठा था। ठकुरानी दरवाजे के सामने से नजर पड़ गयी, तो एक बार खाँस कर बोला—"बेटी, बड़ा गजब हो गया—"

घूँघट खींच लिया और धीरे से बोली—"मुझे सब पता है। दाऊ, इन की तो मति फिर गयी है; मैं क्या करूँ, मरी जा रही हूँ!"

भूरा बोला—"बेटा, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है; मैं सब बना लूंगा। तुम चरका मुझे ला दो, बस सब ठीक हो जायेगा; घबराओ मत!"

ठकुरानी ने ज्यों का त्यों चरका उस के आगे ला धरा।

भूरा ने उसे सम्हाल कर उठाया और बोला—"अभी उठे तो नहीं हैं राजा?"

"नहीं।"—ठकुरानी पीठ फेर कर बोलीं—"सो रहे हैं अभी।"

"सो ही भला" भूरा चलता-चलता बोला—"सो ही भला है।"

÷ ÷ ÷

कुन्दना वह एक हाथ का फलियों का चरका मन्दिर में पुजारीजी को दे कर लौट आया, तो भूरा ने दोनों पहरेदारों को बुला कर कहा—"खबरदार, जो इस बात की किसी से चर्चा तक की! तुम्हारी नौकरी जाती रहेगी; बस, यही कहे देता हूँ!"

दोनों सिर डाले सुनते रहे।....

पहर भर दिन चढ़ आया तो हरेकृष्ण सो कर उठा। माँ ने किसी देवता की 'पूजा' बोली थी सो उससे आ कर कहा—"न्योता करवा दे पाँच ब्राह्मणों के।"

हरेकृष्ण ने कहा—"दाऊ से क्यों न कहा?"

"तू ही कह दे; मैं कैसे बुलाऊँ?, राह चलने लगी है।"

इधर हरेकृष्ण भीतर से निकला, उधर जोरावर क्रोध से हाँफता सीढ़ियों से चढ़ा।

दोनों भूरा के पास आ खड़े हुये। हरेकृष्ण जोरावर के मुँह का भाव देख कर चकित हो गया।

पर भूरा चुप रहा। जोरावर ने एक वार दोनों के मुखों की ओर देखा, फिर फुंकार-सी लेकर बोला—"दाऊ फलियाँ कहाँ हैं?"

भूरा का चेहरा शान्त था। जुबान भी शान्त थी। धीरे से बोला—"बेटा, वे अभी मैंने मन्दिर में भिजवा दीं।" फ़िर तत्काल ही केलों की ओर मुह करके कहा—"अब नया चरका आ रहा है; यह तुम ले जाना; बस, चार-पाँच रोज और लगेंगे पकते।"

हरेकृष्ण कुछ भी न समझ सका। पर जोरावर ने भृकुटि चढ़ा कर कहा—"क्यों? मन्दिर में क्यों भिजवा दीं?"

अब? भूरा ने सिर नीचा कर लिया; चुप रह गया। उधर पलक मारते जोरावर मन्दिर की ओर बढ़ गया।

× × ×

आख़िर गाँव की 'पंचायत' बैठी। ब्राह्मण और ठाकुर वैश्य सभी मन्दिर के आँगन में जमा हुये। जोरावर के विरुद्ध मुक़दमा था। बूढ़े पाठकजी सरपंच हुये और पुजारी से कहा कि—'इतने पंचों के आगे और भगवान् के आगे सब सुनाओ जो जैसे हुआ था।'

तब पुजारी अपना रामनामी दुपट्टा सम्हाल कर खड़े हुये और बतलाया कि—वे उस बेला भगवान् को स्नान करा रहे थे और पूजा की तैयारी थी। फलियों का चरका, जो सेठजी का नौकर दे गया था, भोग की थाली के पास रक्खा था और द्वार की ओर उन की पीठ थी कि मुँह फिरा कर देखा, ठाकुर जोरावर

सिंह जूता पहिने वेदी तक घुस आये और हाथ बढ़ाकर वह चरका उठा लिया और बिना कुछ कहे सुने लौट गये। जूते भगवान् के आगे तक पहुँच गये थे, पूजा भ्रष्ट हो गई ओर मन्दिर भी अशुद्ध हो गया। तब से 'पट' बन्द है अब पंचो की आज्ञा हो सो हो।

हरेकृष्ण एक ओर बैठा था था और भूरा, बैठा था सबसे पीछे दिवाल से लगा।

हरेकृष्ण पंचों में था। सरपंच ने पहिले उसी से प्रश्न किया कि क्या राय है उस की।

हरेकृष्ण ने खड़े होकर कहा—"यह देवता का स्थान है। इस का अनादर हुआ है और इसके लिये ठाकुर जोरावरसिंह को सजा मिलनी चाहिये, जो पंचो को जो जँचे और जो ग़ैरमुनासिब न हो।"

बाक़ी तीनों की भी यही राय हुई।

तब पाठशाला के गुरुजी ने खड़े हों कर कहा—"दंड समुचित ही होना चाहिये। शास्त्र में तो इस अपराध का प्राण-दंड से प्रतिकार लिखा है। पर मेरी तुच्छ सम्मति में मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा अपराधी से कराई जाय। आशा है, आप लोग उस पर विचार करेंगे।"

पंच लोग भीतर उठ कर गये और लौट कर 'निर्णय' सुनाया कि जोरावर सिंह अपराधी हैं; उन्हें मन्दिर की प्रतिष्ठा करानी होगी। और ब्रह्म-भोज करना होगा। अगर वे इस दंड को स्वीकार न करें तो बिरादरी उनका हुक्का-पानी बन्द कर दे, एक महीने के बाद। सुन कर सब लोग चुप रहे तो एक बार फिर सरपंच ने खड़े होकर कहा—"किसी को कुछ कहना हो तो कहे; पंच सुनेंगे।"

कौन क्या कहेगा? इतने बड़े अपराध के खिलाफ़ कौन क्या बोलेगा?

ठाकुर लोग तो लज्जा से कुंठित सिर झुकाये बैठे थे। उन के पूर्वजो ने इस मन्दिर की स्थापना की थी और जोरावर ने उसी मन्दिर की वेदी पर जूते रख दिये, देवता का अपमान करके दिखा दिया। घर में धूल उड़ रही है; अब कहाँ से 'प्रतिष्ठा' के लिये रकम लायेंगे! क्या कर डाला अभागा ने!

कि सहसा पीछे से आवाज आयी—"हुकुम हो तो मैं कुछ अरज करूँ—"

सब की दृष्टियाँ उधर को उठीं। यह भूरा था। मन्दिर सब का है; जिस के

'चोटी' है उसे यहाँ बोलने का अधिकार है। सरपंच ने सोच कर कहा—"कहो, क्या कहता चाहते हो।"

भूरा ने हाथ जोड़ कर कहा—"पंचों, मैं सिर्फ़ यही कहता हूँ कि आसामी की औकात को देख कर सजा दी जाय—"

सरपंच ने कहा—"औक़ात का क्या अर्थ है? औक़ात देख कर तो कोई खता नहीं करता है। तुम्हारा क्या मतलब है, साफ़-साफ़ कहो।"

भूरा ने कहा—"कुछ रहम किया जाय आसामी पर। सजा बहुत ज़्यादा है। बस, मुझे यही कहना है।" कह कर वह बैठ गया।

पंच लोग सोचने लगे। भूरा की बात यों ही नही टाली जा सकती। सजा में क्या कमी की जाय?

कि पंचो की चौकी से हरेकृष्ण खड़ा हो कर बोला—"आसामी की हालत देखते सजा जरूर ज़्यादा है। मेरी राय है कि जोरावर सिंह से सिर्फ़ 'प्रतिष्ठा' करायी जाय और ब्रह्म-भोक का खर्चा मेरे सिर रहे। पंचों की क्या राय है?"

बूढ़े पाठकजी बोलने ही वाले थे कि ठाकुरों के बीच से एक जवान उठ खड़ा हुआ। उस के नथने फूल रहे थे और ओंठ काँप रहे थे, कड़क कर बोला—"पंचों के बीच 'अधर्म' हो रहा है; हमारी इज़्जत पर धूल उड़ायी जा रही है; यह कोई इन्सानियत नहीं है!"

पीछे से आवाज आयी—"उठ चलो यहां से!"

वह जवान और कुछ कहने जा रहा था कि सरपंच ने रोक दिया और बोले—"पंचों के बीच कभी अधर्म नहीं हो सकता; न पंच कभी किसी की इज़्जत पर धूल डालते हैं। पंचों ने ऐसी कोई बात नहीं कही है।"

जवान ने हाथ उठा कर कहा—"और कैसे कहा जाता है, गालियाँ दी जा रही हैं हमें!" कि एक बूढ़े ने उसका हाथ पकड़ कर नीचे को खींच लिया।

पंचायत में खलबली मच गई।

दलगंजनसिंह ठाकुरों में सबसे अधिक समझदार आदमी थे। वे कभी मुदर्रिस थे, 'पचपनसाला' में आ गये थे। उन्होंने सबको शान्त करते हुये कहा—"भाइयों, पंचायत की तौहीन हो रही है, यह मुनासिब नहीं है। पंच लोगों ने फ़ैसला ठीक

किया है। हमें वह मंजूर है और दूसरी बात यह है कि जोरावरसिंह को 'रहम' की जरूरत नहीं है; वह रहम का भूखा नहीं है।"

सरपंच ने कहा—"तो ठीक है; हमें कोई उज्र नहीं है।"

कि वही जवान उठ कर बोला—"तो सेठ जी अपना कहना वापस लें, उन्हों ने जोरावर सिंह की बेइज्जती की है, पंचों के बीच माफ़ी माँगें।"

सन्नाटा हो गया। हरेकृष्ण के चेहरे पर सुर्खी आने लगी।

दलगंजन सिंह वहीं से बैठे-बैठे कहा—"इस पर पंचों की क्या राय है, हम सुनना चाहते हैं।"

तब पाठकजी उठ कर खड़े हुये, कहा—"पंचों के बीच 'अधर्म' नहीं है, न वे किसी की इज्जत पर धूल डालेंगे।" फिर हरेकृष्ण की ओर देख कर कहा—"सेठजी को अपनी बात वापस लेनी होगी और पंचो से माफ़ी भी माँगनी होगी।"

ठाकुरों के चेहरे खिल उठे। दलगंन सिंह ने गद्‌गद् हो कर कहा—"धन्य है!" चारो ओर 'वाह-वाह' होने लगी।

हरेकृष्ण उठ कर खड़ा हुआ। उस के चेहरे का रंग फीका पड़ गया था तो भी सिर ऊँचा करके कहा—"मैं अपनी बात वापस लेता हूँ।"

÷ ÷ ÷

पखवारा बीता। जोरावरसिंह अपने साढ़ू के घर छिपा पड़ा था। मुंह दिखाने की हिम्मत न पड़ती थी गाँववालों को; बिरादरीवाले अलग तीर मारते थे। मन ही मन घुटता था और उस घड़ी को कोसता था, जब वह क्रोध से अंधा हो कर मन्दिर में जूते पहिने घुसता चला गया था और नाचीज-सी फलियों के लिये इतना बड़ा 'कलंक' ले आया अपने सिर पे कि भगवान् को 'अपवित्र' करनेवाला हो गया, जैसे कोई 'डोम' हो या नास्तिक।

उसी जवान ने सब बातें आकर सुनाईं और कहा—"दादा घबराना नत। सब हो जायगा। अपनी दूकान बेंच दूँगा और घर गिरवी रख दूँगा। तुम्हारी तो रहेगी। ठाकुरों ने सिर झुकाना नहीं सीखा है!"

जोरावर की आँखों में पानी छलक आया; बोला नहीं गया। दिया जले उसी भतीजे के साथ गाँव में लौटा।....

वह तो इस चिन्ता और क्लेश से अधमरा हो रहा था, पर पत्नी के चेहरे पर उदासी तक न थी, उमंग से भरी थी और ओठों पर मुसकान आ-आ कर लौट जाती थी। पर जोरावर खाट पर एक करवट से लेटा कड़ियों की ओर देख रहा था। और दृष्टि ऐसी निष्प्रभ मानों उस से सब चमक निकल गई हो।

जब रहा न गया तो कह दिया पास आ कर—"ऐसे उदास हो कर क्यों लेटे हो? लो, यह दूध तो पी लो।"

दूध बनिये की यहाँ कटता था; उस से रुपये ले लिये थे तीस। जोरावर ने लेटे-लेटे कहा—"क्यों दूकान पर नहीं गया दूध?"

बोली—"उसका हिसाब तो पूरा हो गया है। सात रुपये बाकी थे सो मैंने भिजवा दिये हैं। लो, उठो तो।"

जोरावरसिंह चमक कर उठ बैठा और स्वर को तीव्र करके कहा—"तू अपनी अक़ल मत चलाया कर! किस ने कहा था तुझ से रुपये भिजवाने को? मुझे एक-एक पैसा भारी पड़ा है और तू बहाने पर लगी है! ले जा, मैं दूध न पिऊँगा। तू पी ले: दूध पी कर मोटी हो ले, फिर चाहे घर नीलाम हो जाय।"

पत्नी ने गिलास जमीन पर धरा और बैठ कर शान्ति से बोली—"तुम क्यों दुखी हो रहे हो? मैं क्या इतनी मूर्ख हूँ जो रुपये को यों ही फेंक देती? बाबू आया था, बोला—हम दूध नहीं लेंगे, हमें रुपये दो। फिर दस बार आ-आ कर तकाजा कर गया। बताओ, क्या करती?"

जोरावर ने कहा—"आज मुझ पर तंगी है तो सब साले चारों ओर से नोंच रहे हैं।"

पत्नी ने दुख में डूब कर कहा—"चच्चा ने आदमी भेजा था, रुपयों के लिये।"

चच्चा से अठारह रुपये लिये थे, साल गुजर गयी, एक पैसा न दिया।

क्षण भर चुप रहा फिर एक गहरी साँस ले कर बोला—"इस जिन्दगी से मैं ऊब गया हूँ, कहाँ तक झेलूं? अब तो ईश्वर मौत दे दें सो भला!"

पत्नी ने चौंक कर मुँह पर हाथ धर दिया, फिर रुँधे हुये गले से कहा—"कैसी अशुभ सी भाषा बोल रहे हो!"

आँखों से एक बूंद आँसू लुढ़क कर मैली धोती में सूख गया।

+ + +

मायकेवाले न इतने आबरूदार थे न उन पर जमीदारी थी; खेती-बारी करते थे और अच्छे खाते-पीते कहे जाते थे। नक़दी तो बहुत न रहती पर अनाजों से खत्तियाँ हमेशा भरी रहती थीं, जिन में सौ-सौ मन गेहूँ समा जाते थे। चार भाई थे और चारो साझे थे। चारों की बहुयें थीं और चारों के औलाद थी। मोटा पहिनते थे और मोटा ही खाते थे। रईस न थी, पर ग़रीबी की मार से बचे थे और सब गुनाहों से बच-बच कर चलते थे।

जोरावरसिंह से बहिन की शादी हुई थी, उन दिनों तो उस के ठाठ आर थे, अब वे बातें तो स्वप्न के समान हो गयी थी। तो भी कभी ज़ोरावर ने सालों के आगे हाथ न फैलाया था, न बहिन ही कभी अपने दुखों की दर्दभरी कहानियाँ सुनण्ती षी। वह इसे 'पति' और ससुराल का अपमान समझती थी और उन की कोई भी बुराई सुन न सकती थी।

पर इस बार उस का दिन हिल गया। अब और कहाँ जाय ? माई-बाप होते तो जोर था; बेटी की मुसीबत में जी जान लड़ा देते। भाई बहुत प्यार करते हैं अकेली बहिन है। भावजें लाड़ करती हैं; अकेली ननद है। पर धन ऐसी चीज है कि इस के लिए अपने तक पराये हो जाते हैं कोई दूसरे की इज्जत के लिये अपने पसीने की कमाई काहे को बहायेगा!

तो भी आशा करके वह चली आयी। आज उस पर समय आ पड़ा है। सहोदर भाइयों के द्वार पर सहायता की पुकार करने आयी है उस के पति का 'मान' रह जाय किसी तरह!

+ + +

तीन दिन लगे और चार रातें। मायके से पत्नी लौट कर आई तो जोरावर घर में अकेला बैठा था चुप्पी मारे। सफलता के उल्लास से पत्नी का चेहरा चमक रहा था और आँखों से खुशी टपक रही थी। रुपयों की थैली आगे रख कर बोली—"तीन सौ से ऊपर ये हैं और बाक़ी दादा ले कर आयेंगे बुध को। एक गाड़ी गेहूँ शहर भेजें हैं बेचने को।"

पर जोरावर के चेहरे पर आनन्द की एक रेखा न दौड़ी। वह जाने कैसा हो कर अपने पैरों की अँगुलियाँ तोड़ता रहा, मुँह से एक शब्द तक न बोल सका। इतनी बड़ी दिलेरी के लिये पत्नी को शाबासी न दे सका। आज वह पत्नी की इस सहायता के लिये 'ऋणी' है; सालों की उदारता के लिये 'ऋणी' है; ससुराल वालों ने उस को संकट से उबारा है!....

चौदस को गाँव में 'सुपारी' फिरी। पूर्णमासी को मन्दिर की पुनःप्रतिष्ठा हुई। जयपुर से नई 'मूर्ति' आई नया सिंहासन बना। पुजारी जी को पाँचो वस्त्र और इक्यावन रुपये मिले। यज्ञ हुआ और षोड़शोपचार से भगवान् की पूजा हुई। जोरावर को भगवान् का 'चरणामृत' मिला। लगा कि उसके हृदय का सब कल्मष सब दुख-द्वन्द हर लिया भगवान् ने। जाने कब तक मूर्ति के आगे हाथ जोड़े खड़ा रहा। तन-बदन की सुधि जाती रही। आँखों से आँसुओं की धारें बँधी थीं।

मन्दिर के आँगन में सामियाना तना था। संगीत हो रहा था; मुंशीजी इसराज बजा रहे थे और दिलसुख गा रहा था:—

'आजु सखी, बिछुरे पिय पाये।
मिटि गये सकल कलेश री!'

उधर तिदरी में औरतों की भीड़ थी। ढोलक पर गीत हो रहे थे भवानी-शंकर के। हरेकृष्ण की माँ आई थीं और बहू को साथ को लाई थीं।

वह सब के पीछे थी। भगवान् की मूर्ति को देखती थी; पति को देखती थी और चारों ओर देखती थी। आँखें भर-भर आती थीं। उन्हें चादर से पोछती थी और सुध-बुध खोती थी।....

तीसरे पहर से फिर ब्राह्मणों की 'पंगत' उठी। ब्राह्मणों के पीछे बिरादरी और गाँव वालों ने खाया।

× × ×

जोरावर ने थैली जो झाड़ी तो कुल पैंतीस रुपये कुछ आने बाकी निकले। पत्नी के आगे लाकर बोला—"लो, यही बचा है!"

कहा—"बहुत है। काम तो सब हो गया; न बचा न सही, बचा कर क्या करना था।"

ज़ोरावर ने कहा—"दाऊ के रुपये अभी तक न दे सका। जो कहीं उसने तकाज़ा भेजा तो कैसे करूँगा?"

पत्नी ने कहा—"देखा जायगा।"

पर वही बात हुई। दो दिन मुश्किल से गये होंगे कि तकाज़ा आ गया उन रुपयों का। तकाज़ा हरेकृष्ण ने भेजा था, भूरा ने नहीं। लेकिन नौकर ने यही आकर कहा कि—दाऊ ने रुवये माँगे हैं।

आदमी की मनोवृत्ति है। जो 'बड़ा' हो जाता हैं, वह केवल अपने वड़प्पन और सुख-विलास-ऐश्वर्य से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहता। वह दूसरे की उस सुख-शान्ति से ईर्ष्या करता है, जो सुख-शान्ति किसी दूसरे को किसी तरह प्राप्त हो जाती है। उस 'वड़े' के लिये यह एक आवश्यक बात हो जाती है कि सबसे 'नीचे' रहने वाले सब अधिक से अधिक कष्ट में रहें। तभी तो उसे अपनी 'सुख-शान्ति का अनुभव होगा।

हरेकृष्ण से जोरावर की यह इतनी-सी सुख-शान्ति देखी नहीं गई। और तो कोई उपाय नहीं था। तकाज़ा भिजवा दिया—उन दो सौ रुपयों का। नौकर आ कर कह गया कि—दाऊ ने रुपये माँगे हैं। और 'दाऊ' को कानों कान खबर तक नहीं।....

पड़ी परेशानी आ पड़ी। कहाँ से दें? वे ही तीस रुपल्ली हैं। उतने से कैसे क्या होगा?

घरवाली ने दबी जुबान से एक वार हँस कर कहा—"कोई लिखा-पढ़त तो है नहीं; न दें तो क्या कर लेंगे हमारा!"

ज़ोरावर को इस स्त्री-बुद्धि पर ग्लानि लगी। बोला—"तू यह क्या कह रही है! एक तो उसका दिल देख कि बिना दस्तावेज के दो सौ रुपये उठा कर दे दिये और एक तेरा दिल है कि कह दें—हम ने कब लिये थे रुपये? और कोई नहीं जानता, परमात्मा तो जानते हैं दो सौ रुपल्ली के लिये ईमान खो दूँ! छिः!"

शरम से पत्नी का सिर नीचा हो गया। बोली—"मैं तो यों ही कह रही थी देंगे क्यों नहीं; लेकिन अभी तो न दे पायेंगे। फसल पर देंगे उनका सब।"

जोरावर और न बोला। वह रुपयों के लिये जुगत सोचनेगा। और सारी रात चिन्ता-फ़िक्र में कट गई करवटें लेते।

\+ \+ \+

और तो कुछ न था। रथ खड़ा था पुराना और भैंस थी वह। इन दोनों का नम्बर आ गया। रथ की अब चाल न रही है। हो सका तो अगली साल नया रहलू बनवा लेंगे। जयराम बढ़ई से जाकर कह आये कोई गाहक लगा दो रथ का, तुम्हें भी कुछ मिलेगा। और भैंस ले गये खेड़े के नकाशे में, जहाँ जानवरों की बिक्री होती थी। पछाहीं भैंस थी; दूध से मटकी भर देती थी। बयासी में बिकी जो कहीं सौ-सवा सौ में सब विक जाय तो फिर कोई चिन्ता नहीं। पर सौ-सवा सौ उस रथ के लिये मिलना कठिन था। पुराना हो गया था और जगह-जगह टूट भी गया था।

रात को अपनी दूकान बढ़ाकर जयराम उधर से निकला तो उसने आकर बताया कि गाहक लगे हैं दो-तीन। पर चालीस से ऊपर नहीं बोलते।

जोरावर ने हँस कर कहा—घत्तेरे की! चालीस में! अरे, दस रुपये की तो उसमें पीतल निकल आयगी और तीस-पैंतीस की जोड़ी होगी।"

जयराम ने लज्जित हो कर कहा—हाँ, सो क्यों न होगी। और एक जगह से पचासी मिल रहे हैं, चाहे पूरा सैंकड़ा भी दे दें।"

जोरावर ने उत्सुक हो कर कहा—"कहाँ से? अरे भैया, तुम पचासी ही दिला दो तो कम नहीं है। कौन दे रहा है?"

जयराम सिटपिटाने-सा लगा। फिर वड़ी मुश्किल से कह पाया—"हरेकृष्ण कह रहे हैं—"

जोरावर को जैसे किसी ने गरम चिमटे से मार दिया हो पीठ पर। चौंक कर जा रहा। घड़ी बीती की चेहरे पर लाली आ गई, आँखें जलने लगीं और माथे पर बल पड़ गये। ओंठ काट कर बोला—"अच्छा! इस दोग़ले की यह हिम्मत! मेरे बाप-दादे के रथ को खरीदेगा! ओहो!"

जयराम को लगा कि जैसे वह भारी विपद में फँस गया। अपनी जीभ काटने लगा कि मेरे जले मुँह से यह बात क्यों निकल गई।

जोरावर तब तक तनिक शान्त हो गया था। मोंछें उमेठ कर बोला—"सुनो जयराम, उस उल्लू के पट्ठे से कह देना कि अब अगर रथ खरीदने की बात कही तो तेरी जुबान चिमटे से पकड़ कर खींच ली जायगी, साले, हरामखोर!"

'साले हरामखोर' उस ने इतने जोर से कहा कि जयराम चौंक पड़ा कि उसी से तो नहीं कह रहे हैं!

+ + +

गाँव में रथ बेचना ठीक न होगा, सोंच कर जोरावर उसे साढ़ू के गाँव को ले गया तराई में। रथ बिक गया पैंसठ रुपये में लेकिन फिर साढ़ू ने न आने दिया। उन की नई हवेली बनी थी। बोले कि—'गृह-प्रवेश करके जाना।....

इधर एक घटना हो गई छोटी-सी। बड़ा लड़का लक्ष्मण गाँव के स्कूल में पढ़ने जाता था। वहाँ उस से झगड़ा हो गया एक सहपाठी से। स्कूल के बाहर युद्ध का चैलेंज दे दिया। बड़े पर जगह थी। वहाँ पर हाथापाई हो गई। लक्ष्मण ने उसे पटक लिया और दो-तीन घूँसे मारे कस कर। तब तक और लड़कों ने आ कर छुड़ा दिया दोनों को।

पिटे योद्धा का उत्साह ठंडा पड़ गया था। उसके चोट तो बहुत लगी थी, पर रोया नहीं। अपने कपड़ों की धुल झाड़ता रहा। लक्ष्मण ने अपना बस्ता उठाते हुये कहा—"अब बोल! और लड़ेगा?"

तब उसे ध्यान आया। चुपके से एक मुट्ठी में धूल भरी और सामने खड़े लक्ष्मण के मुँह पर मार दी फेंक कर और कूद कर ऊपर चौंतरे पर आ खड़ा हुआ।

इधर वह हो रहा था कि उधर से कुन्दना आ पहुँचा। लक्ष्मण के मुँह, आँख और नाक में धूल भर गई थी। कुरते से पोंछ रहा था और खड़ा राह के बीचोंबीच।

कुन्दना पास आ खड़ा हुआ और उन लड़कों से पूछने लगा—"यह जोरावर का लड़का है?"

लड़कों ने कहा—"हाँ, हाँ,।"

कुन्दना ने मुसकरा कर कहा—"लाओ बेटा, मैं झाड़ दूँ !" और वह उसका मुँह पोंछने लगा उल्टा-सीधा अपने हाथों से। लक्ष्मण उस का हाथ झिड़क कर पीछे को हट गया।

तो कुन्दना हँसा, हंस कर वोला—"ठाकुर साहव, केला को फली खाओगे? वे देखो, वे लगी हैं।"

लक्ष्मण ने एक बार उन केला के पेड़ों की ओर देखा जो दूर-दूर तक पत्तों की बाहें फैवाये खड़े थे आसमान में रावण की मूर्ति की तरह सीधे हो कर।

कुन्दना ने कहा—"केला की फली खाओगे ठाकुर साहव ?"

और ताली पीट कर हंस पड़ा।

लक्ष्मण ने एक बार कहा—"हट !" और उस का चेहरा जाने क्यों अप्रतिभ-सा हो गया।

कुन्दना ने फिर कहा—"खाओगे केला की फली ?" और वह हंसता-हँसता आगे वढ़ने लगा।

पिटा हुआ लड़का, जो चौंतरे पर खड़ा था ऊपर, वहीं से चिल्ला कर वोला—"खाओगे केला की फली ! खाओगे केला की फली !"

लक्ष्मण उसे मारने दौड़ा। पर वह दूर भाग गया और वहीं से चिल्ला-चिल्ला कर कर कहने लगा—"खाओगे केला की फली !"

× × ×

उस दिन तो कुछ न कहा। पर जव रोज ही उधर से निकलते समय कुन्दना उसे बुला कर हँस कर कहने लगा—"केला की फली खाओगे ठाकुर साहव ? वे देखो, वे लगी हैं !" और लड़के स्कूल में अलग चिढ़ाते तो लक्ष्मण रूआसन होने लगा यहाँ तक कि एक दिन वह सचमुच रोने लगा और रोता-रोता माँ के पास आया।

और ज्यों-ज्यों वे पुचकारने लगीं त्यों-त्यों और फूट-फूट कर रोया। वे वार-वार कलेजे से चिपटाती थीं और रोने का कारण पूछती थीं, पर वह चुपता न था। इतना रोया-इतना रोया कि हिचकियाँ वँध गई।

वड़ी देर में शान्त हुआ तव फिर सब वातें कही।

सुन कर माँ ने कुन्दना को गालियाँ दीं और बेटे का मुँह पोछ कर कहा—"अब तू इधर से मत जाया कर। इधर जुलाहों में हो कर चला जाया कर मदरसे को। नासपीटे की जुर्रत तो देखो! मेरे बालक से हँसी-मजाक करेगा! उस दिन को भूल गया जब जूतों की मार पड़ी थी मुँह पै!"

फिर बेटे के सिर पर हाथ फिरा कर कहा—"अपने पिता से मत कहियो, अच्छा!"

लक्ष्मण ने सिर हिला कर कहा—"अच्छा, नहीं कहूँगा।"

धीरे से बोली—"सुन पायें तो लगे का खून पी लें कुन्दना का।"

× × ×

ज़ोरावर राह में पैदल चला आ रहा। लाठी हाथ में थी और रुपये कमर से बँधे थे। जाने क्या सोचता चला आ रहा था कि पीछे से बैलों के घुंघरुओं की आवाज़ सुनी। सिर घुमाकर तो देखा, भूरा है। अकेला रहलू हांकता चला आ रहा था जाने किधर से।

इन्हें देखा तो फ़ौरन बैलों की रस्सियाँ खींच दीं, फिर माथा झुका कर सलाम किया एक हाथ से।

ज़ोरावर ने साधारण स्वर में पूछा—"कहाँ गये थे?" और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा।

भूरा क्षण भर देखता रहा फिर उस ने पीछे से पुकार कर कहा—"बेटा, कहाँ चले जा रहे हो; मैं रास खींचे पड़ा हूँ।" और इतना कह कर वह चाबुक मार कर बैलों को बढ़ा लाया। बैल फुफकारी मारने लगे। पास आ कर वह रहलू से उतर पड़ा और बोला—"बैठो जल्दी!"

ज़ोरावर के ओठों पर तनिक हँसी आई और वह रहलू पर बैठ लिया। तब भूरा ने रस्सियाँ ढीली कीं। बैल छुन्-छुन् करते कच्ची राह में दौड़ने लगे।

धूप बिलकुल ढल गई थी और सूरज का गोला सामनेवाले बाग़ के पेड़ों में छिप गया था। दूर खेतों से किसानों के लड़के अपने पशुओं को हांकते चले आ रहे थे और सिर के ऊपर से नीले आकाश में पक्षियों की एक टोली लम्बी हो कर उड़ी चली जा रही थी।

बैल छुन्-छुन् करते कच्ची राह में दौड़ते चले जा रहे थे और रहलू के पीछे भूरे रंग की महीन धूल उड़ती आती थी और दोनों में बातें हो रही थीं।

सहसा ज़ोरावर ने कहा—"दाऊ, सबेरे तनिक हमारी ओर चले आना।"

"चला' आऊंगा। कुछ काम है मेरे लिये ?"

कहा—"काम और कुछ नहीं है; वे रुपये देने थे।"

भूरा ने सिर झुका कर कहा—"सो ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी रुपयों की !"

ज़ोरावर ने तनिक हँस कर कहा—"जल्दी कहाँ हुई ? दस-बारह दिन तो हो चुके तुम्हारा आदमी आये।"

भूरा मुँह देख रहा। फिर हौले से कहा—"बेटा, मैंने तो आदमी न भेजा था।"

ज़ोरावर ने आगे को सरक कर कहा—"तो हरेकृष्ण ने भेजा होगा।"

भूरा ने रस्सिनाँ खींच कर बैलों के एक-एक चाबुक मारा। बैल और ज़ोर से भागने लगे। तब पीछे को मुँह करके कहा—"हाँ; उन्ही ने भेजा था और बेटा, रुपये तो वे मैंने उसी दिन कोठी में जमा कर दिये थे।"

"जमा कर दिये ? कहाँ से ?"

बोला—"तुम लोगों से इतनी सालों से इनाम-गिराम पाता रहा हूँ, सो थोड़ा-बहुत हो गया है। बेटा, रुपये वे सेठजी को मैंने अपने पास से दे दिये हैं।"

डूबते हुये सूर्य का अरुण रंग ज़ोरावर के चेहरे पर आ कर पड़ रहा था और बालों पर थोड़ी-सी धूल छा गई थी। किसी युद्ध में परास्त योद्धा की तरह सब के सुख का भाव हो गया। उदासी के स्वर में बोला—"तुम ने क्यों देदिये।"

भूरा ने जवाब दिया—"राजा, बहुत दिन हुये, मैं तुम्हारे बप्पा के पैर दबाया करता था रात को। उन का उतारा पहिनता था और उन कीजूठन खाता था। उस का कुछ भी बदला नहीं चुका सका हूँ। यह मेरी बढ़ौती है. अब और तुम्हारी सेवा नहीं कर पाऊंगा। मेरे कोई नहीं है। इस देह को पाँच पंच आग देगें और फिर आगे कोई एक अंजलि जल देनेहारा भी नहीं है। बेटा, मेरा दिल मत तोड़ना। अपने 'दाऊ' की ये दस कौड़ी अब अनादर करके लौटाना मत !" —कहते-कहते उस का गला भर आया।

उस का यह स्नेह-भाव देख कर ज़ोरावरसिंह ने और मुंह न खोला। पर [illegible] के धूल छाये चेहरे के भीतर जो दो आँखें 'दम दम' करके चमक रही थीं वे

स्पष्ट कह रही थीं—सेवक का धन ज़ोरावरसिंह कैसे स्वीकार करेगा ? कैसे कैसे ?....

गाँव में घुसे तो घरों में दिये जल गये थे। दूर से, कानों में मन्दिर की आरती के शंख, घड़ियालों की चिरश्रुत ध्वनि आई।

÷ × ÷

"एक बात कहूँ ?"—पत्नी ने कहा।

ज़ोरावर फ़रसी में दम मार रहा था। मुंह का धुआँ ऊपर छोड़ कर बोला—"कहो, क्या कहोगी ?"

बोली—"अब ये दो सौ भैय्या को दे दो। दाऊ को तो अभी ज़रुरत नहीं है; जब मौका दीखे तो लौटा देना, हमें किसी का रखना थोड़े ही है। अभी ये रुपये तुम ठीक समझो तो भैय्या को भिजवा दो; बाक़ी फिर खरीफ़ पर दे देना।"

ज़ोरावर न बोला।

कहने लगी—"बात रह जायगी। भैया तो चाहे न सोचें, भावजें कहने से न रुकेंगी। मैंने कभी उन की एक बात नहीं सुनी है। अब सुननी पड़ेगी!"

ज़ोरावर न बोला।

रुक कर पूछा—"बोलो, दोगे ?"

ज़ोरावर ने कहा—"तो फिर तू चली जा करनपुर। तू रुपये लाई थी, तू ही अपने हाथों से जा कर दे। और देख! दादा ज़रूर मना करेंगे; लेकिन तू मानना मत। वे न लें तो 'बड़ी' को दे आना। बाक़ी भी दूँगा।"....

पत्नी ने सब सीख लिया और छोटे बच्चे को साथ ले कर रुपये लौटाने चली भैय्या के। घर का पसिया नौकर गाड़ी हाँकता गया।....

इधर अम्मा गई उधर लक्ष्मण को आज़ादी मिल गई पूरी। मदरसा से आता और फ़ौरन गुल्ली-डंडा ले कर बाहर निकल जाता। ज़ोरावरसिंह रोकते नथे।....

तब गोधूलि बेला हो चुकी थी। गायें हार से चर कर लौट आई थीं और बछड़े घरों में रँभा रहे थे दूध पीने के लिये।

ज़ोरावरसिंह बैलों की सानी करके भीतर घर में आया। हाथ धोये और पैरों में जोड़ा डाल कर बाहर चला कि बैलों की नाँद में साँड़ को मुँह डाले पेखा।

इस सांड़ को वह तीन-चार दिन से रोज़ भगा रहा है और साँड़ यह ऐसा 'हिल' गया है कि रोज़ ही नाँद पर आ जाता है।

उन्हीं पैरों भीतर को लौट आया और भाला उठा ले चला तिदरी से। पर साँड़ ने आहट पा ली और वह भाग छूटा नाद से। ज़ोरावरसिंह उस के पीछे भाला ले कर दौड़ा।

दस क़दम तक दौड़ता गया होगा साँड़ के पीछे कि उधर से लक्ष्मण को आते देखा।

रो रहा था और कुरते की बाँहों से आँसू पोंछता चला आ रहा था। ज़ोरावर-सिंह खड़ा हो गया भागते से। तब लक्ष्मण ने आँसुओं के और रोदन के बीच कहा पिता से रुक-रुक कर, हिचकियाँ ले कर कि—कुन्दना ने उस से अभी कहा है—'केला की फली खाओगे!'

× × ×

भाला वह हाथ में और आँसू पोंछता लक्ष्मण के पीछे।

घड़ी बीते कुंयें पर आ पहुँचे। जहाँ वे केला के तीनों पेड़ खड़े थे ऊंपर को गरदन ऊठाये आसमान में।

अँधेरा झुक आने लगा था। दूर से नहीं दीखता था। पर यदि कोई पास आ कर ज़ोरावर का चेहरा देखता तो भय खा जाता।

भाला वह हाथ में और आँसू पोंछता लक्ष्मण पीछे। एक बार चारो ओर सिर घुमा देखा और गरज कर पुकारा—"कुन्दन!"

कोई नहीं बोला। कुन्दन शायद भीतर हवेली में है।

आँखों से आग निकल रही थी और हर साँस के साथ तेज़ी से विशाल सीना ऊपर को उठ-उठ आता था। देही काँप रही थी क्रोध से।

हाथ का वह भाला ऊपर उठाया और केला की फलियों में निर्दयतापूर्वक मार दिया। किनारी के फूल टूट-टूट कर नीचे गिरने लगे और फलियाँ वे झोंके खाने लगीं और केला का वह लम्बा पेड़ हिलने लगा। इस तरह पाँच-छः बार भाला मारा अपनी बलिष्ठ भुजाओं से।

हरेकृष्ण उस समय अपनी कोठी के ऊपर बैठा पतंग उड़ा रहा था। मीलों

लम्बी डोर चली गई और सन्ध्या के धूमिल आकाश में जाने जा कर टूट गई। हरेकृष्ण ने हाथ के पास से डोरा तोड़ दिया। फिर वह अपनी लम्बी-चौड़ी छत पर चहल-क़दमी करने लगा। और चहल-क़दमी करते-करते ही देखा कि नीचे से केला के कुछ पत्ते अँधेरे में ऊपर उठ-उठ आते हैं।

छज्जे पर उझक कर कहा डपट कर—"अरे कौन है? कौन केला तोड़ रहा है?"

ठीक उसी क्षण हवेली के भीतर से कुन्दना निकला, लालटेन टाँगने। उस ने भी केला के नीचे आदमी देखा केला को तोड़ता तो, वहीं से चिल्लाकर कहा—"कौन है रे? खड़ा तो रह चोट्टा!" और वहीं देहली पर लालटेन रख कर भाग आया।

जोरावरसिंह न बोला। उस ने कुन्दना को पास आने दिया। और बिलकुल पास आया और कहा—"कौन?" कि जोरावर ने साँझ के झुटपुटें में एक कदम आगे बढ़ कर उसकी गरदन दोनों हाथों से पकड़ ली। कुन्दना के मुँह से निकला—'ग़ॅं—ग़ॅं—ग़ॅं' और दो हाथ उसकी गरदन को दबाते गये—दबाते गये। फिर कटे वृक्ष की तरह तिरछा होकर गिरने लगा।

पर जोरावर ने उस का गला न छोड़ा। वह जमीन पर गिर पड़ा तो उस की छाती पर चढ़कर कण्ठ पर अँगूठा धर कर दबाने लगा।

हरेकृष्ण की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चकित होकर तनिक देर खड़ा रहा ऊपर छज्जे पर; फिर विद्युतवेग से नीचे को भागा!

और जब वह देहली की लालटेन उठाकर कुंयें के पास आया तो देखा—कुन्दना की छाती पर राक्षस की तरह जोरावरसिंह चढ़ा बैठा है और कुन्दना आँखें बाहर निकल आई हैं।

हरेकृष्ण ने स्वर को तीव्र करके आवाज लगाई—"अरे दौड़ो-दौड़ो! पकड़ो!"

दड़े के उस पार और वनिये की दूकान पर जो लोग चल-फ़िर रहे थे, सब दौड़े आये। और घर के भीतर से जो कोई थे, सब हरेकृष्ण की पुकार सुन कर बाहर को लपके।

जोरावरसिंह ने यह जान कर कि कुन्दना के प्राण शेष नहीं है; उसे छोड़ दिया। वह उसकी छाती से उतर कर खड़ा हो गया भाला उठा कर।

देखते-देखते चारो ओर से आदमियों ने उसे घेर लिया। पर कोई भी उसके पास न जा सका। नीचे पैरों के पास कुन्दना की मृत देह पड़ी थी और केलों के बीच जोरावर सिंह खड़ा था भाला हाथ में लिये ऐसा बीभत्स दृश्य था और जोरावरसिंह साक्षात् 'केहरी' लग रहा था।

हरेकृष्ण ने काँपती आवाज से सब लोगों से कहा—"खबरदार, यह भागने न पावे। पुलिस को बुला—"

कि 'खच्च' करके हरेकृष्ण की छाती में भाला घुस गया।

शोर मचा। लोग हरेकृष्ण के पास को दौड़े और उस कोलाहलपूर्ण अन्धकार में जोरावरसिंह लापता हो गया।

और केला के वे तीन पेड़ खड़े थे ऊपर को सिर उठाये, मानों काले वस्त्र पहिन कर यमदूत आये हों मर्त्यलोक में।

× × ×

जल के किनारे बैठ कर हरेकृष्ण की विधवा युवती पत्नी ने दियासलाई घिसी, कापती उँगुलियों से दीपक जलाया, फिर संगमरमर की तरह सफेद, चूड़ियों से रहित एक बाँह आगे करके उसे गंगाजी में प्रवाहित कर दिया।

भूरा पीछे खड़ा था। उस से देखा नहीं गया जैसे कोई दिल निकाल रहा हो, आखों से अँगोछा लगा कर बढ़ गया उधर।....

बीस हाथ की दूरी पर इसी तरह एक दियासलाई और जल उठी। वह अपनी आँखें पोंछता धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ आया। फिर पीछे से खड़े होकर देखा—

संगमरमर की तरह की सफेद, चुड़ियों से रहित एक बाँह आगे करके किसी अभागिनी ने गंगाजी के जल में दीपक प्रवाहित किया :

यह उस अभिमानी जोरावरसिंह की, नसीब की मारी, विधवा पत्नी थी जो मढ़ी पर फाँसी खा कर मर गया था।....

दोनों दीपक बहते-बहते बीच धार में एक दूसरे से सट गये फिर उसी तरह चिपटे हुये आगे बढ़ने लगे अन्धकार फोड़ कर।

✻